

# लौटते पुरस्कार का सच और भारत

डॉ. कौस्तुभ नारायण मिश्र



॥ नामूलं लिख्यते किञ्चित् ॥

प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

नयी दिल्ली-110 055



by Dr. Kaustubh Narayan Mishra

*Published by:*



**PUBLICATIONS DEPARTMENT**

**Akhila Bhāratiya Itihāsa Sāṅkalana Yojanā**

Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj',

Jhandewalan, New Delhi-110 055

Ph.: 011-23675667

e-mail : abisy84@gmail.com

Visit us at : [www.itihassankalan.org](http://www.itihassankalan.org), [www.abisy.org](http://www.abisy.org)

© Copyright : ABISY

**First Edition** : Kali Yugābda 5117, i.e. 2015 CE

The Views expressed and opinion expressed in the book are personal of the author and do not necessary reflect the agreement of the Publisher.

**Contribution** : ₹ 50/-

**Typesetting & Cover Design by:**

Gunjan Aggrawala

**Printed at:**

Graphic World, 1659 Dakhni Sarai Street,  
Daryaganj, New Delhi-110055

## प्रकाशकीय

पुस्तक-प्रकाशन एक कठिन एवं दुरूह कार्य है। इसमें लेखक की अनुभूतियों एवं तथ्यपरक प्रस्तुति के साथ-साथ, संबंधित पाण्डुलिपि की उपादेयता और प्रासंगिकता का आकलन, लेखक के समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ तादात्म्य स्थापित करके करना होता है।

निश्चित रूप से देश में अब तक अनेक प्रकार की विसंगतियाँ रही हैं। वे सभी कारण स्वाभाविक भी नहीं रहे हैं। अधिकांश प्रायोजित किए गए हैं अपने निहित स्वार्थ और अहं को संतुष्ट करने के लिए; देश और समाज को ताक पर रखकर। ऐसे स्वार्थ के बादल इतने घने और काले रहे हैं कि अपने हित में यदि किसी विदेशी ने भी हमें कोई प्रलोभन दे दिया, तो हमने उसे स्वीकार कर लिया और व्यापक समाज एवं देशहित की चिन्ता नहीं की। इस प्रकार के कार्य करनेवाले लोगों ने भारत की आत्मा, इसकी मूल प्रकृति एवं संस्कृति के साथ एकाकार होकर एवं समझकर कोई कार्य नहीं किया; बल्कि सदब उसकी उपेक्षा की। परिणामस्वरूप उसके विरुद्ध देश की आत्मा के अनुरूप सहज और स्वाभाविक लगाव के कारण एक व्यापक समूह एकजुट होकर सक्रिय होना आरम्भ हो गया। इस प्रकार की सकारात्मक सोच के लोगों ने 1995 और 1998 में अपनी इसी सक्रियता के कारण व्यवस्था भी सम्भाली; किन्तु विरोधी तत्त्वों ने इन्हें पराजित, हतोत्साहित एवं नष्ट करने की कोई चेष्टा नहीं छोड़ी और परिणामस्वरूप छलपूर्वक 2004 में पुनः सत्तासीन हो गये।

वास्तव में यह कोई विचारधारा का संघर्ष या विरोध नहीं है; यह भारतीयता एवं अभारतीयता की स्वाभाविक और अस्वाभाविक स्वीकार्यता में से किसी एक को चुनने और उसके साथ चलने के सवाल से जुड़ा हुआ विषय या प्रश्न है। भारतीय मानसिकता रखनेवालों की सजग सक्रियता का ही परिणाम है कि 2014 में भारतीयता को समर्पित लोगों को देश ने स्वीकार किया और वे व्यवस्था को देश और समाज-केन्द्रित बनाने हेतु उद्यत हो गये। इनको इसी सक्रियता के कारण देश

के अन्दर और बाहर लोगों ने इनकी शक्ति का एहसास किया और अपने लिए उनको संकट का एहसास हुआ ।

वैश्विक स्तर पर पूँजीवाद का खुला ताण्डव चलता ही है, सभी जानते हैं; उसकी प्रतिक्रियास्वरूप कुछ देशों में फैली उससे और भी घृणित वामपंथी विचार ने तो मानवता को और भी शर्मसार करने पर मजबूर कर दिया । अब जबकि भारत की ताकत बढ़ रही है, भारत विकास के पथ पर निरन्तर तेजी से अग्रसर है । वैश्विक भूमिका अपनी शर्तों पर भारत की बढ़ रही है तो पूँजीवाद और वामपंथ समेकित विद्रूप चेहरा साफ़ दिखाई पड़ने लगा है । यो दोनों नकारात्मक विचार अपने पंख भारत में भी फैलाए रहते हैं । अब, जब इनको लगने लगा था कि भारत की संयुक्त राष्ट्र संघ में भागीदारी लगभग तय है । तो इन्होंने देश के अन्दर और बाहर पश्चिमी पूँजीवाद और चीनी वामपंथ के इशारे पर षड्यंत्र करना आरम्भ कर दिया । भारत संयुक्त राष्ट्र संघ का स्थायी सदस्य न हो सके, बाकायदा लामबन्दी की । देश के अन्दर भी वामपंथियों के माध्यम से पुरस्कार वापसी-जैसा घिनौना खेल खेलने की हद तक आ गये । उनकी मंशा ही है कि वर्तमान में देश की व्यवस्था सम्भाल रहे लोगों की छवि धूमिल हो और वे लोग अपने आन्तरिक संकटों, झंझटों और समस्याओं एवं गतिरोधों में उलझा दिए जायें कि अपने विकास, अपनी शक्ति और अपने विश्वव्यापी स्वरूप और भूमिका पर ध्यान केन्द्रित न कर सके ।

इस पुस्तक के लेखक देश को समर्पित एक संवेदनशील एवं विचारसंपन्न व्यक्ति ने वास्तविकता की संक्षिप्त, किन्तु गहरी पड़ताल की है— ऐसा प्रथम दृष्टया प्रतीत होता है । लेखक ने अपने सघन और गहरे अध्ययन एवं अनुभूति से देश की आत्मा एवं संस्कृति को जाना, परखा एवं समझा है और तब लेखक को लगा है कि भारत की सनातन संस्कृति को क्षति पहुँचानेवालों की वास्तविकता देश, समाज और दुनिया के सामने आनी चाहिये; क्योंकि यह देश महत्त्वपूर्ण है, बाकी चीजें आती-जाती रहेंगी । देश रहना चाहिये । देश रहेगा तो; यहाँ की सभ्यता, संस्कृति एवं यहाँ के लोगों की अस्मिता एवं प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रहेगी । अन्यथा आक्रान्ताओं के चंगुल में यदि यह देश फँसा, तो फिर बहुत मुश्किल होगी । हम इसके लिए प्रतिष्ठित विचारक एवं लेखक कविहृदय डॉ० कौस्तुभ नारायण मिश्र को बधाई एवं साधुवाद देते हैं कि उन्होंने संक्षिप्त समय में एक समीचीन और प्रासंगिक कार्य किया है ।

—प्रकाशक

## भूमिका

**भा**रत के राष्ट्रीय क्षितिज पर मई, 2014 में एक अभूतपूर्व घटना घटी। केंद्र की सत्ता में पहली बार राष्ट्रीयता एवं भारतीयता को समर्पित पूर्ण बहुमत की सरकार स्थापित हुई। यह एक युगान्तरकारी घटना थी, जिससे सकारात्मक सोच का राष्ट्रव्यापी वातावरण निर्मित हुआ।

केन्द्र में हुए इस परिवर्तन ने आम जनता के भीतर विश्वास और आशा का संचार किया है। पुरानी सड़ी-गली नीतियाँ बदल रही हैं। जनकल्याणकारी योजनाएँ लागू हो रही हैं। चहुँओर सृजन और उल्लास का वातावरण है। ऐसे समय में तमाम शैक्षणिक एवं अकादमिक संस्थाओं की रीति-नीति और योजनाओं की समीक्षा भी प्रस्तावित है। जनता की गाढ़ी कमाई से संचालित होनेवाली ये संस्थाएँ और उनसे अकूत लाभ कमानेवाले कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी विक्षुब्ध और उद्वेलित हैं। झूठ, छद्म, लाभ एवं लोभ पर आधारित उनका रेतमहल ढहने की कगार पर है। ऐसे में उन्हें केन्द्र सरकार को बदनाम करने के लिए एक बहाना चाहिए था। ये विरोध के बहाने अपने कुटिल राजनीतिक मिशन पर चल रहे हैं। जहाँ आम जनता एक सशक्त एवं सक्रिय सरकार को लेकर, जिसने विदेशों में भारत को एक नयी पहचान दी; उत्साहित, आनन्दित एवं आशान्वित है, वहीं जन-विमुख कुछ साहित्यकारों को यह लगता है कि देश में लेखक असुरक्षित हैं, असहिष्णुता बढ़ी है और अभिव्यक्ति की आज़ादी ख़तरे में है, क्योंकि वे देश और दुनिया की वास्तविकता को देख नहीं पा रहे हैं।

साहित्य अकादमी एक स्वायत्त संस्था है। इसके अध्यक्ष का चुनाव सभी

भाषाओं के लेखकों द्वारा लोकतान्त्रिक पद्धति से होता है। आरम्भ में लगातार एक दशक तक जवाहरलाल नेहरू जी इसके अध्यक्ष रहे। क्यों और कैसे ? यह विस्तृत चर्चा का विषय है। यहाँ इसकी चर्चा न तो उचित है और न ही इस विवाद में पड़ने से कोई लाभ। हाँ, इतना कहना चाहिये कि नेहरू जी लेखनी के धनी व्यक्ति थे। किन्तु राजनीतिक लोभ एवं स्वार्थपरता ने उन्हें गहरे प्रभावित किया; जिसके परिणाम अब भी दिखाई दे रहे हैं। खैर, बात साहित्य अकादमी की हो रही है, जहाँ पहली बार एक हिंदी का और गैर-वामपंथी यशस्वी लेखक सर्वसम्मति से अध्यक्ष चुना गया है, जिसका कार्यकाल लगभग आधा बीता है और आधा बाकी है।

किसी भी व्यक्ति की हत्या न तो भारतीय संविधान के अनुसार और न ही भारतीय सनातन संस्कृति के अनुसार उचित है। इसलिये देश के सभी व्यक्तियों, आमजन से लेकर प्रधानमंत्री तक— सभी ने इस घटना की निन्दा की है और उसकी समुचित जाँच का आदेश भी दिया है। किन्तु कुछ साहित्यकारों ने अपने साम्राज्य को खिसकता देखकर, इन घटनाओं के बहाने साहित्य अकादमी द्वारा मिले अपने पुरस्कारों को लौटाने की घोषणा करनी शुरू कर दी। ये वे साहित्यकार हैं, जिन्हें 1984 में हुए सिख-नरसंहार, 1990 के दशक में काश्मीर के हिंदुओं का संहार और पलायन, 1989 के भागलपुर के दंगे, 1993 के मुम्बई के दंगे एवं 2012 से 2014 के बीच में उत्तरप्रदेश में हुए दर्जनों साम्प्रदायिक दंगे, जो भारत की सांस्कृतिक विरासत पर कलंकस्वरूप हैं, नहीं दीखता।

हिंदी-साहित्य एवं भारतीय वाङ्मय के शिखरपुरुष यशस्वी साहित्यकार पं० विद्यानिवास मिश्र जी के अन्तेवासी, प्रिय और उनकी ज्ञान एवं संस्कृति की परम्परा का कुशलतापूर्वक निर्वहन कर रहे डॉ० कौस्तुभ नारायण मिश्र, जो खुद ही एक अच्छे कवि और लेखक हैं, ने देश के बौद्धिक प्रतिष्ठानों पर विगत 60-70 वर्षों से तिकड़म और छद्म के सहारे कुण्डली मारकर बैठे इन साहित्यकारों के चेहरे से नकाब उतारने का कार्य किया है। नयनतारा सहगल से लेकर अशोक वाजपेयी से होते हुये मुनव्वर राणा तक के साहित्य की संक्षिप्त, किन्तु व्यवस्थित पड़ताल करते हुए; उनके द्वारा समय-समय पर किये गए तिकड़म, जोड़-तोड़ और अवसरवादिता के कुछ नमूने प्रस्तुत किये हैं। डॉ० मिश्र की इन टिप्पणियों को देखकर ऐसा स्पष्ट भाषित होता है कि राष्ट्रवादी विचारधारा को देश के बौद्धिक



प्रतिष्ठानों पर काबिज़ इन बुद्धिजीवियों ने किस तरह दलित और वंचित बनाकर रखा है। इन बौद्धिक प्रतिष्ठानों पर कब्ज़ा करने, उनसे पुरस्कार लेने और लाभ कमाने के लिये ये साहित्यकार किस हद तक नीचे जा सकते थे, उसका कच्चा-चिट्ठा डॉ० मिश्र की इन टिप्पणियों में स्पष्ट दिखाई देता है। उन्होंने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि पुरस्कार वापसी किसी तत्कालीन घटना से उपजे हुए दुःख का परिणाम न होकर पूर्वाग्रहग्रस्त राजनीतिक सोच का परिणाम है। उन्होंने इनकी कलम की ताक़त से ज़्यादा तिकड़म की ताक़त से मिलनेवाले यश को बड़ी ही निर्ममता, निर्भीकता और स्पष्टता के साथ रेखांकित किया है। मैं उनके इस तथ्यपरक निर्भीक लेखन के लिये साधुवाद देता हूँ और आशा करता हूँ कि उनकी ये टिप्पणियाँ छद्म बुद्धिजीवियों को बेनकाब करने में सहायक सिद्ध होंगी।

**सुरेन्द्र दुबे**

आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष, हिंदी-विभाग;

पूर्व अधिष्ठाता, कला संकाय,

दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

## लेखकीय

**इ** सको लिखने की आवश्यकता तो थी नहीं। पर यह तात्कालिक आवश्यकता का परिणाम है। कभी भी नकारात्मक बात सोचना, लिखना और करना— तीनों खराब माना जाता है और माना जाना भी चाहिये; किन्तु जब नकारात्मकता किसी समाज और देश में विद्रूपता फैलाने और स्वार्थपरता की चरम पर पहुँच जाय; व्यक्ति, देश, समाज, यहाँ तक की सभ्यता, संस्कृति, आस्था और विश्वास पर ही खतरा मँडराने लगे, तो किसी भी चीज का निषेध नहीं है। गीता में इसीलिये भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्य और धर्म की रक्षा के लिये कुछ भी करने की छूट की बात कही है। यदि हमसे कोई शस्त्र से लड़ने आता है तो हमें क्या करना चाहिये ? यह हमारे पुरखों ने समझाया है। शास्त्र की लड़ाई, जब अज्ञानी के हाथ में चली जाती है तो वह क्रमशः शस्त्र का रूप ग्रहण कर लेती है और तब किसी शास्त्रज्ञ को भी शस्त्र उठाने के लिये विवश होना पड़ता है।

आज समय है कि हमें देश के महत्त्वपूर्ण बौद्धिक प्रतिष्ठानों पर अपनी संस्कृति का परचम लहराये; भारतीयता और भारतीय संस्कृति के अनुरूप ज्ञान और विद्या-परम्परा को आगे ले जायें। यदि हमने इसमें तनिक भी विलम्ब किया या लक्ष्य को तिरोहित किया, तो फिर देश के सामने बड़ा संकट खड़ा होगा और हम हाथ पर हाथ धरे बैठे रह जायेंगे। हमारे सामने कोई विकल्प और रास्ता नहीं होगा और तब हम अपने आपको ही कोसोंगे। क्योंकि, हम अवसर आने पर भी विलम्ब करके धोखा तो अंततः अपने साथ ही कर रहे हैं।



लड़ाई का जो खेल साहित्यिक पुरस्कारों को लौटाने के बहाने खेला गया है। वह बहुत ही सोची-समझी रणनीति का हिस्सा है। हमें हमेशा देशविरोधी शक्तियों को बेनकाब कर उन्हें मुख्य धारा से बाहर करना होगा। क्योंकि, वे मुख्य धारा में आने से रहे, प्रतिकूल और विपरीत धारा के आदी हो चुके हैं। यह पुस्तक एक संक्षिप्त प्रयास है और आगे भी यह प्रयास विभिन्न रूपों में जारी रहेगा। इसमें प्रत्यक्ष और परोक्ष, जिसका भी सहयोग और आशीर्वाद मिला है, उनकी हम हृदय से वन्दना करते हैं। जिन श्रेष्ठ महानुभावों का नाम ले सकते हैं, उनका भी और जिनका नहीं ले सकते, उनके भी हम ऋणी हैं। इसमें विभिन्न स्रोतों और माध्यमों और व्यक्तिगत अनुभव का बड़ा योगदान रहा है। दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय के हिंदी-विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं आचार्य डॉ० सुरेन्द्र दुबे जी ने इसकी भूमिका लिखकर, मेरा और इस लेखनी का मान बढ़ाया है। वे हमारे शिक्षक भी रहे हैं तथा सुप्रसिद्ध नाटककार और भारतीय संस्कृति की विरासत को ठीक से समझनेवाले हैं। उनको नमन। हम कृतज्ञ हैं अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नयी दिल्ली एवं उसके संगठन-सचिव आदरणीय डॉ० बालमुकुन्द जी के, जिन्होंने स्वतः सहजतापूर्वक तैयार पाण्डुलिपि स्वीकारकर प्रकाशित करने हेतु रुचि दिखायी। कुशल टंकन एवं सेटिंग और डिज़ायनिंग में सिद्धहस्त श्री गुंजन अग्रवाल जी के; प्रूफ-रीडिंग में सहयोग हेतु मेरे प्रिय डॉ० रत्नेश त्रिपाठी जी के प्रति भी मेरा हृदय से आभार। देश एवं समाज-हित के इस वास्तविक विचार में किसी भी प्रकार सहयोगी, सहानुभूति एवं संवेदना रखनेवाले प्रसिद्ध भजन-गायक श्री अनूप जलोटा, ख्यातिप्राप्त लेखक श्री चेतन भगत आदि जैसे सभी श्रेष्ठ एवं प्रियजनों को हार्दिक साधुवाद। हम साहित्य अकादमी के वर्तमान कार्य, उसके अध्यक्ष एवं पूरी टीम की सूझ-बूझ और कार्यप्रणाली का भी धन्यवाद करते हैं। अन्त में सभी बूझ और अबूझ के प्रति भी आभार और कृतज्ञता।

विजयदशमी, कलियुगाब्द 5117

गोरखपुर

मो०: 09454005400, 09454005404

**कौस्तुभ नारायण मिश्र**

knm.dlitt@yahoo.com



# लौटते पुरस्कार का सच और भारत

( एक )

**अ**

शोक वाजपेयी जी अंग्रेजी-साहित्य में स्नातकोत्तर हैं और प्रशासनिक अधिकारी थे। कुटिल चाल चलते हुए अनेक बार, अनेक अवसरों पर अपने को राष्ट्रवादी, सनातनी और भारतीय घोषित करते रहे हैं। ऐसा होने का इन्होंने साज़िशों का जाल बुना रहा होगा, आज देखकर ऐसा ही लगता है। फलतः भारतीय राजनीति के अज्ञातशत्रु, सनातन संस्कृति के व्यापी बहुआयामी विराट् पुरुष श्री अटल बिहारी वाजपेयी और स्वर्गीय विद्यानिवास जी मिश्र-जैसे सनातनी, ज्ञान-परम्परा के प्रखर उपासक और सिद्धान्तों से किसी कीमत पर समझौता न करनेवाले श्रेष्ठ व्यक्तित्व भी इनके झाँसे में आ गये। शायद इसलिये, क्योंकि ये लोग कुटिल नहीं रहे हैं। छद्मवेषी अशोक वाजपेयी जी ने पहले तो भारतीयता का मामा मारीच वाला काल्पनिक चोला पहनकर विद्यानिवास जी से अपने संबंधों का धूर्ततापूर्ण उपयोग करते हुए

(1)

केन्द्रीय विश्वविद्यालय, महात्मा गाँधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय (वर्धा, महाराष्ट्र) के प्रथम कुलपति हो गये। जबकि इनकी प्रशासनिक सेवा मात्र लगभग 2 माह शेष थी। तब तक साहित्य के प्रति अपनी रुचि का दिखावा करते थे। किन्तु भारतीय या किसी भी साहित्य के ज्ञान की इनकी गूँज, रात के अंधेरे में किसी को काटने के लिये उद्यत मच्छर की भनभनाहट से अधिक नहीं थी। ये महोदय 'सैयद हैदर रज़ा फाउन्डेसन' के मुख्य कर्ता हैं और उसकी कुल सम्पत्ति लगभग 300 करोड़ रुपये की है। साहित्य अकादमी से इनका मतभेद गहराया क्यों? इसकी विस्तृत चर्चा आगे करते हैं।

वैसे तो इनकी लेखकीय क्षमता और योग्यता बहुत मतलब योग्य नहीं है। कोई उत्कृष्ट और अविस्मरणीय प्रकाशन भी नहीं है। पर साहित्य के भरोसे कुछ भी पा लेने की कुटिल क्षमता के ये महोदय रँगें सियार हैं। अटल जी से मिलने के लिए अपने सनातनी और भारतीयता के प्रति समर्पण का कौन-कौन सा नाटक इन्होंने नहीं किया है। इन्होंने कुलपति होने के बाद तीन प्रकार की महत्वाकांक्षा पाली— 1. विदेश में भारत के राजदूत हो जायें। इसके लिये काँग्रेसी नेता और अधिवक्ता अभिषेक मनु सिंघवी जी के दिवंगत पिता और अमेरिका में भारत के राजदूत रहे पूर्व राज्यसभा सांसद श्री लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी के जीते जी उनसे भी सम्पर्क साधकर, उसको भुनाने की कोशिश की और विद्यानिवास मिश्र जी के दिवंगत होने के बाद लक्ष्मीमल्ल सिंघवी जी के काफी निकट रहने लगे थे। क्योंकि विद्यानिवास जी से सिंघवी जी के निकट के सम्बन्ध थे और उन्हीं के कारण ये भी सिंघवी जी के प्रगाढ़ परिचित बने थे। यह दाल खराब और खारा पानी होने के कारण नहीं गली और अशोक जी सिंघवी जी से बहुत लाभ नहीं ले सके, किन्तु काँग्रेस की संस्कृति में घुसने की चिरप्रतीक्षित मनोकामना ज़रूर पूर्ण हो गयी। कुलपति होने का स्वांग, मिश्र जी के साथ इसलिये सफल रहा, क्योंकि वे बहुत ही सहज, सरल और निष्कपट व्यक्ति थे, 2. 'पद्म' और 'रत्न' पुरस्कार की इनकी बहुत बड़ी लालसा रही है और इसके लिये नरसिंह राव जी, देवगौड़ा जी, गुजराल जी, अटल जी और मनमोहन जी की सरकारों के गिर्द काफी चक्कर लगाते रहे हैं। कुलपति रहते हुए अनेक बार विद्यानिवास जी की मर्यादा को भी तोड़ा है।

इन्होंने यह जानते हुए, कि डॉ० शंकर दयाल शर्मा जी ने राष्ट्रपति रहते हुए दो बार राज्यसभा के लिए विधानिवास जी का नाम नरसिंह राव जी से मनोनयन के लिये मांगा; क्योंकि उन्होंने मध्यप्रदेश के एक पूर्व सांसद, यदि मुझे नाम ठीक से स्मरण आ रहा है, तो लक्ष्मी नारायण शर्मा जी को व्यक्तिगत बातचीत में कहा था कि, आप विधानिवास जी को जानते हैं ? उन्होंने कहा हाँ, फिर शंकर दयाल जी ने कहा— “अद्वितीय विद्वान् हैं, मैंने उनकी विगत तीन वर्ष में लगभग डेढ़ दर्जन पुस्तकें पढ़ी हैं। विद्वान् ऐसा होना चाहिये और उनकी देश को बहुत आवश्यकता है।” इसी आधार पर उन्होंने नरसिंह राव जी से कहा था। पर नरसिंह राव जी ने इसकी अनदेखी की। विधानिवास जी इस बात को स्वीकार करते, न करते, यह बाद का विषय था। यहाँ इसके बहुत विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। पर यह जानकारी स्वयं सांसद जी ने ही विधानिवास जी को दी थी। अन्यथा शायद विधानिवास जी को पता भी नहीं चलता। बाद में दिल्ली में एक कार्यक्रम में शंकर दयाल जी से उनकी भेंट हुई, तो उन्होंने खुद वही बात दुहरायी।

विधानिवास जी को इन सब बातों की कोई लालसा भी नहीं थी। लालसा होती तो 1962 में राममनोहर लोहिया जी ने उनके घर आकर सोशलिस्ट पार्टी और संयुक्त प्रान्त से राज्यसभा की सदस्यता ऑफर की थी, जब उनकी प्रेमचन्द जी पर एक पुस्तक छपी थी और उन्होंने वह पढ़ी था। पर विधानिवास जी ने उस समय, आज से 54 वर्ष पूर्व, जब वह केवल 37 वर्ष के थे, स्पष्ट मना कर दिया था कि मैं किसी पार्टी से राज्यसभा का सदस्य नहीं बनूँगा। 2003 में उनका मनोनयन हुआ और उन्होंने उसे स्वीकार भी किया। अशोक जी की इसी कुटिलता से अवगत होते हुए अटल जी ने भी उनको अपने आसपास फटकने नहीं दिया। दुःखी और नाराज होकर 2004 में यू०पी०ए० की सरकार बनने के बाद जनार्दन द्विवेदी जी के माध्यम से सोनिया जी के बहुत निकट हो गये और काँग्रेसी संस्कृति के पूरी तरह हिस्सा हो लिये। 3. इनको राज्यसभा से बहुत प्रेम रहा है। इसी कारण पहले ये सनातनी थे; जब भाजपा ने इनको घास नहीं डाली तो ये सज्जन कोई रास्ता न देखकर अपनी लालसा पूरी करने के लिये संसार के सबसे सेक्युलर परिवार और पार्टी की वर्तमान मुखिया सोनिया जी के काँग्रेसी पालने में झूल गये।

काँग्रेस से इनकी निकटता योजनाबद्ध थी या सहज स्वाभाविक, इस विषय में अभी कुछ नहीं कहता। पर इतना जानता हूँ कि इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र का पदेन अध्यक्ष भारत सरकार का संस्कृति मंत्री होता है। तत्कालीन संस्कृति मंत्री श्रीमती मेनका गाँधी जी से कुछ सैद्धान्तिक मुद्दों पर मिश्र जी के मतभेद थे, जिससे मिश्र जी ने इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कलाकेन्द्र, नयी दिल्ली की ट्रस्टीशिप से 2003 में त्यागपत्र दे दिया। यद्यपि उनका त्यागपत्र स्वीकार नहीं हुआ, पर कुछ ही दिन बाद जगमोहन जी ने संस्कृति मंत्री के नाते कार्यभार संभाला और मेनका जी के पास पर्यावरण एवं वन मंत्रालय बना रहा। सबको मिश्र जी से अशोक जी के निकट सम्बन्ध का पता था और अशोक जी बिना बताये उसका फ़ायदा उठाते हुए इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र के ट्रस्टी हो गये। नियति का विधान ही कह सकते हैं कि 13 फरवरी, 2005 को देसही देवरिया, निकट हेतिमपुर, कुशीनगर, उत्तरप्रदेश के एक महाविद्यालय के शिलान्यास-कार्यक्रम, जिसकी अध्यक्षता समाजवादी नेता श्री मोहन सिंह जी यह कहते हुए कर रहे थे कि 'मुख्य अतिथि जी के सामने तो मैं बच्चा हूँ, फिर भी उन्हीं के आशीर्वाद से अध्यक्षता कर रहा हूँ', उसी दिन एक ही क्वालिस गाड़ी से 157 पुस्तकों के लेखक विद्यानिवास जी, साहित्य अकादमी के वर्तमान अध्यक्ष विश्वनाथ प्रसाद तिवारी जी और आचार्य अनन्त मिश्र जी— तीनों लोग क्वालिस में बीच में एकसाथ; अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा, महाराष्ट्र के वर्तमान प्रतिकुलपति आचार्य चितरंजन मिश्र जी एवं इन पंक्तियों के लेखक कौस्तुभ— दोनों चालक के बगल में तथा आनन्द मणि जी एवं अजयकीर्ति जी भी उसी गाड़ी से गोरखपुर लौटे। 14 फरवरी, 2005 को गोरखपुर से वाराणसी जाते समय वही क्वालिस दुर्घटनाग्रस्त हो गयी, जिसमें मिश्र जी और चालक सहित कुल तीन लोग सवार थे। यह बात प्रसंगवश; क्यों कि आगे की शृंखलाओं में सम्भव है कि इसकी आवश्यकता आन पड़े। प्रसंगतः इतना ही, इसलिये भी क्योंकि आँसू धमंगे नहीं और अनेक बार अपने लिये बहुत कठोर होना अच्छा रहता है। आँसू दिखें भी नहीं, तो सुन्दर बात है।



( दो )

वैसे तो मैं भूगोल विषय का विद्यार्थी हूँ और मेरा कोई बहुत अध्ययन नहीं है। अब तक, इस अवस्था तक मात्र लगभग चार हजार पुस्तकों का ही अध्ययन कर पाया हूँ। हाँ, इतना ज़रूर है कि इसमें से लगभग पौने चार हजार किताबें भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति और दर्शन से ही संबंधित रही हैं। यह भी संयोग ही कह सकते हैं कि 2004 में यू०पी०ए० की सरकार आ गयी और अशोक जी को उनकी इच्छा के अनुरूप काँग्रेसी लोगों के निकट रहने का ख़ूब अवसर मिलता गया। अज्ञेय जी की पत्नी कपिला वात्स्यायन जी, जब 2006 में राज्यसभा के लिये पहली बार मनोनीत हुई, तो अशोक जी उस स्थान पर खुद का मनोनयन चाहते थे। यद्यपि कपिला जी, अशोक जी को आरम्भ से ही बहुत पसन्द नहीं करती रही हैं। यहां अज्ञेय जी-कपिला जी-इला डालमिया जी की न तो हम कोई चर्चा कर रहे हैं और न करने की कोई आवश्यकता है। लेकिन इतना तो हुआ कि सम्भवतः 2007 या 2008 में अशोक जी अपने पीछे के सारे सम्बन्ध और रसूख ताक पर रखते गये और ललित कला अकादमी के अध्यक्ष हो लिये। इसी बीच भारतीय मूल के मूलतः दमोह, मध्यप्रदेश के इस समय 94-वर्षीय फ्रांसीसी नागरिक सैयद हैदर रज़ा जी से भी ललित कला अकादमी के कारण अतिआत्मीय सम्बन्ध अशोक जी ने विकसित कर लिया। रज़ा जी ने इन पर आँख बन्द करके विश्वास किया। किन्तु महत्वपूर्ण यह है कि रज़ा जी, अज्ञेय जी और पूर्व प्रधानमंत्री इन्द्र कुमार गुजराल जी के भाई और विश्वप्रसिद्ध चित्रकार श्री सतीश कुमार गुजराल जी के भी बहुत निकट तथा विद्यानिवास जी, कपिला जी एवं लक्ष्मी जी के भी अच्छे परिचितों में रहे हैं। अशोक जी ने इन सभी का रज़ा जी से कोई ज़िक्र या उल्लेख नहीं किया। लेकिन चाहे जो हो, अशोक जी कलाकार तो हैं ही, आज रज़ा फाउन्डेशन के लगभग 300 करोड़ के मालिक हैं। रज़ा जी के विषय में मुझे बहुत जानकारी तो नहीं है, पर लोग उन्हें भारतीय कला और संगीत का बड़ा हस्ताक्षर मानते हैं और वे अपनी सम्पत्ति तथा विश्वभर से प्राप्त पुरस्कारों और अन्य आधारों पर रज़ा फाउन्डेशन का भारतीय युवाओं, संगीत और कलाप्रेमियों को आगे बढ़ाने के लिए गठन किया।

ये वही अशोक वाजपेयी जी हैं जो पुरस्कार वापस करनेवाले छद्मवेशी

(5)

साहित्यकारों का नेतृत्व कर रहे हैं, जो कहते हैं कि साहित्यकारों का राजनीति से क्या मतलब? और जिन्होंने मार्च 2014 के अन्तिम सप्ताह में (तिथि ठीक से स्मरण में नहीं है), दिल्ली में हिंदी और अंग्रेजी के पत्रकारों को बुलाकर बाकायदा कॉंग्रेस-सोनिया जी के पक्ष और भाजपा-नरेन्द्र मोदी जी के विरोध में पत्रकार-वार्ता किया था। ये वही अशोक जी हैं जो दिल्ली में रहकर अधिकांश प्रशासनिक अधिकारी, साहित्यकार— सीताकांत महापात्र, केकी दाखवाला, जे०पी० दास, गोपीचन्द नारंग, इन्द्रनाथ चौधरी और के० सच्चिदानन्दन-जैसे शौकिया बुद्धिविलासी साहित्यकारों की किताबें और कविता-संग्रह रातों-रात छपवाने के पारंगत माने जाते हैं और समीकरण फिट करते रहते हैं। ये अलग बात है कि कुछ प्रशासनिक अफसर अच्छे साहित्यकार भी हुए हैं। इस विषय को वामपंथ और कॉंग्रेस का इतना बड़ा प्रायोजन मिला हुआ है कि यह मीडिया में चर्चा का विषय है। 20 अक्टूबर, 2015 को वामपंथी पार्टियों द्वारा प्रायोजित पूर्वाग्रही साहित्यकारों के संगठन 'जनवादी लेखक संघ', 'प्रगतिशील लेखक संघ' और 'जनसंस्कृति मंच' के मुट्ठीभर लोग मंडी हाउस, नयी दिल्ली में प्रदर्शन करने की योजना पूरी तरह फ्लॉप हुई। ये सभी इतने कुण्ठित लोग हैं कि चौबीसों घंटे राजनीति करते रहे हैं, अपद्रव्यों का सेवन करते रहे हैं और अब कलाई खुल रही है तो तौबा-तौबा चिल्ला रहे हैं।

अरे भाई, 1954 में स्थापित साहित्य अकादमी, स्वायत्तताप्राप्त संस्थान है। देश के 24 भाषाओं में, विभिन्न भाषाओं की जूरी द्वारा सुझाये गए नाम को पुरस्कार, सम्मान आदि देती है। अब तक देशभर में लगभग 6,000 लोगों को विभिन्न भाषाओं में किसी-न-किसी रूप में सम्मान और पुरस्कार प्राप्त हो चुका है। मुनव्वर राना जी ने 28वें व्यक्ति के रूप में प्रायोजित तरीके से टेलीविजन पर पुरस्कार लौटाने की घोषणा की; जिससे मार्केटिंग अच्छी तरह हो सके। अरे भाई! यदि पुरस्कार लौटाना है और आपकी मंशा साफ़ है, तो देनेवाले को जाकर लौटाइये ! ये लोग ऐसा इसलिये नहीं करेंगे; क्योंकि ये अकादमिक अपराधी हैं और अब अपनी दूकान बन्द होता देखकर परेशान हैं। इन्होंने योग्य और पात्र साहित्य सृजनकर्ताओं को प्रायोजित तरीके से आगे आने ही नहीं दिया। लगभग 6,000 लोगों में से मुख्य पुरस्कार पानेवाले लगभग 1,250 लोगों में से मात्र 35 ने अब तक अवैधानिक और अमर्यादित तरीके से केवल पुरस्कार लौटाने की

घोषणा की है। प्रथम तो लौटानेवालों का नाम सुझानेवाले जूरी का अपमान एवं साहित्य अकादमी का अपमान है और दूसरा इन लौटानेवालों का प्रतिशत कुल प्रतिशत और सम्मानित लोगों का दशमलव एक भी नहीं है। साथ में यह भी जान लें कि इन 35 में से मात्र दो ने 31 अक्टूबर, 2015 तक चेक के माध्यम से पुरस्कार-राशि अकादमी को लौटाई है। प्रशस्ति-पत्र और स्मृति-चिह्न तो किसी ने भी अभी तक नहीं लौटाया है। ये, केवल वही लोग हैं, जो मीडिया में रहकर अपनी बाज़ार बनाते हैं, साहित्य की दूकान चलाते हैं और साहित्य का विपणन करते हैं। वास्तविक साहित्यकार यह सब नहीं करता। किसी बात के विरोध के अनेक वैधानिक और सुसंस्कृत तरीके हैं। 17 अक्टूबर, 2015 को तो अशोक जी और गणेश देवी जी ने— दोनों मूलतः अंग्रेज़ी-शिक्षा से शिक्षित साहित्यकारों ने बाकायदा योजना बनाकर *न्यूयॉर्क टाइम्स* में इस आशय की खबर छपवाई कि, भारत में साहित्यकार पुरस्कार वापस कर रहे हैं और यह शर्म की बात है।

इस खेल की शुरुआत के पूर्व की वजह की चर्चा यहाँ करना आवश्यक समझते हैं। फोर्ड फाउंडेशन और बाहर से और अन्य अनेक स्थानों से भारत में एन०जी०ओ को मिलनेवाला धन काफी मात्रा में आता रहा है। विदेशों से बार-बार भारत सरकार से यह भी कहा जाता रहा है कि ठीक से हिसाब और ऑडिट करके ब्योरे वापस नहीं भेजे जाते हैं। इसके पहले की सरकारों ने इस बात पर बहुत ध्यान नहीं दिया था। यह सरकार ध्यान दे रही है और कह रही है कि व्यवस्थित काम हो और साथ में लेखा-जोखा ठीक रहे; क्योंकि विदेशों में देश की छवि खराब होती है। परिणामस्वरूप ऐसे लोगों के पास पैसे आने कम हो गये। इसके एक शिकार हैं अशोक जी के अनन्य मित्र गणेश देवी जी, जो कि लगभग एक दशक से प्रतिवर्ष लगभग दो करोड़ रुपये फोर्ड फाउंडेशन से अपने एन०जी०ओ के लिये लेते आ रहे हैं और अब वह खेल बन्द है। परेशान होना तो स्वाभाविक है न भाई ! हाँ, चलते-चलते, अशोक जी की अब तक कुल 22 पुस्तकें छपी हैं और उसमें से 16 एक ही प्रकाशन से।

यहाँ एक बात का और भी उल्लेख कर दें। फोर्ड फाउंडेशन-जैसी संस्थाएँ भारतीयों द्वारा लिये पैसे का ब्यौरा भी ठीक से चाहती हैं और लगातार पैसा देते रहना भी चाहती हैं। इसके पीछे उनकी मंशा यह रहती है कि यहाँ की

सभी पार्टियों और सरकारों का उनको विश्वास भी मिलता रहे और वे अपनी गतिविधियाँ भी यहाँ फैलाती रहें और भारतीयता का अपहरण भी होता रहे। इस तरह की दुहरी भूमिका पश्चिम और पूँजीपरस्त लोगों की हमेशा से रही है। यह उनकी संस्कृति और संस्कार का हिस्सा है। भारतीयता को प्रेम करनेवाले हर हिन्दुस्तानी को न केवल यह बात समझनी चाहिये, बल्कि इससे हमेशा सतर्क और सावधान भी रहना चाहिये।

अंग्रेज़ी के साहित्यकार कहे जानेवाले गणेश नारायण दास उर्फ गणेश देवी जी वडोदरा के सयाजीराव विश्वविद्यालय में प्रोफेसर रहे हैं और इनको भी साहित्य अकादमी का मुख्य सम्मान तथा जनवरी, 2014 में ‘भारत की जीवित और मृत भाषा’ के कार्य पर प्रसन्न होकर ‘पद्मश्री’ भी दिया गया। इन्होंने देश में 730 जीवित भाषाओं का उल्लेख किया है। इस श्रीमन के ज्ञान का स्तर यह है कि इनको भाषा और बोली में न तो अन्तर पता है, और उनके बीच समवध का पता। भारत में 3,000 से अधिक बोलियों और भाषाओं की बात हजार जगह कही जाती है। इन सज्जन से कोई यह पूछे कि जीवित और मृत भाषा की परिभाषा क्या है और भेद क्या, तो इनके पास कोई उत्तर नहीं है। गणेश देवी जी ने भी सिर्फ साहित्य अकादमी पुरस्कार लौटाने की घोषणामात्र की है और शेष प्राप्त सम्मान की तो वह भी नहीं। इनका एक एन०जी०ओ० है, जिसका नाम है ‘भाषा रिसर्च एण्ड पब्लिकेशन’; इसके तहत देवी साहब भारतीय भाषाओं पर काम करते हैं। कहने के लिये ये श्रीमन, गणेश देवी जी प्रभावशाली और अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त लेखक बताये जाते हैं और इसीलिये इनका यह एन०जी०ओ० विदेशों से भी अनुदान एवं सहायता प्राप्त करता है या यों कहें कि विदेशों से रुपया ऐंठने के कारण ही ये अंतर्राष्ट्रीय विद्वान् कहे जाते हैं। वर्तमान सरकार के कड़े रुख के कारण विगत वर्ष से इनको विदेशों से धन मिलना बन्द हो गया है। फोर्ड फाउंडेशन के अतिरिक्त देवी साहब नीदरलैण्ड के एक और संदिग्ध दानदाता से भी ख़ासी मोटी रकम दान में ले चुके हैं। इनको दान देनेवालों में जर्मनी की कम्पनी ‘एक्सन होम्स’ नाम की एक संस्था तथा इंग्लैंड की ‘कैथोलिक रिलीफ सर्विस’ नामक संस्था के द्वारा दिये गये एक लाख यूरो की राशि भी इनकी सम्पत्ति में शामिल है।

वित्तीय वर्ष 2010-'11, 2011-'12 एवं 2012-'13 में फोर्ड फाउन्डेशन सहित अनेक विदेशी संस्थाओं से भारत में सर्वाधिक चंदा आया हुआ है और वह भी किसी-न-किसी रूप में इसमें शामिल है। इन तीन वित्तीय वर्षों में अरविन्द केजरीवाल जी के एन०जी०ओ० को लगभग 100 करोड़ डालर, मेधा पाटेकर के 'नर्मदा बचाओ आन्दोलन' संस्था को लगभग 14 करोड़ डॉलर एवं गणेश देवी जी को 20 लाख डॉलर प्राप्त हुए हैं। इसमें फ्रांस की एक संस्था, अमेरिका की एक संस्था 'एक्सन एड' द्वारा दी गई रकम भी शामिल है। सभी यहाँ डॉलर में, क्योंकि समुचित परिवर्तनीय हैं और इसमें अमेरिका और फोर्ड फाउन्डेशन की भागीदारी सबसे अधिक है। गणेश देवी जी गुजरात के तेजगढ़ को केन्द्र बनाकर 'आदिवासी अकादमी' नाम से भी एक संस्था चलाते हैं। कहने के लिए इसमें आदिवासी बच्चों को निःशुल्क शिक्षा देते हैं; पर सत्य यह है कि वे इसी बहाने 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी' से व्यापक धन उगाही करते हैं और वे प्रसन्नतापूर्वक देती भी हैं; क्योंकि ये श्रीमन् आदिवासी भोले-भाले भारतीयों को ईसाई-पंथ में मतांतरण में न केवल सहयोग करते हैं, बल्कि ये मतांतरण के खेल का व्यापक हिस्सा हैं।

### ( तीन )

आइये, अब थोड़ी चर्चा काशी की कर लेते हैं; क्योंकि बिना काशी की चर्चा के भारतीय संस्कृति की रक्षा और उसके समीकरण की बात पूर्ण नहीं हो सकेगी। अब देखिये दुनिया के सबसे बड़े सेकुलर, सहिष्णु और राजनीति से कोई सम्बन्ध न रखनेवाले काशीनाथ जी को ! अशोक वाजपेयी जी ने तो 2014 के लोकसभा में दिल्ली में पत्रकार-वार्ता की थी। जब मोदी जी काशी से चुनाव लड़ने आए और उनकी पार्टी ने उनकी घोषणा की, तो काशीनाथ जी का ख़बर में बयान आया था कि यदि मोदी जीत गये तो काशी हार जायेगी। अब काशी की संस्कृति नष्ट हो जायेगी, अब काशी में कुछ बचेगा नहीं, अब काशी जल उठेगी, अब लोग यहाँ कैसे रहेंगे ? आदि। किन्तु मोदी जी के डेढ़ साल बीतने के बाद भी अभी वे वहीं रहते हैं और किसी ने उनको लोहा गरम करके अभी तक दागा नहीं है, जिसके वे हक़दार लगते हैं; क्योंकि किसी के विषय में झूठी ख़बर फैलाना या

अफवाह फैलाना अपराध है। यह बयान तो ऐसा था, जैसे काशी को यही महोदय चौबीसों घंटे अपने सर पर उठाए रहते हैं। काशी की पूरी संरक्षा, सुरक्षा और संस्कृति इन्हीं के हवाले है। वास्तव में ये गोबर पाथनेवाले साहित्यकार शराब के नशे में यह भूल जाते हैं कि हम कह क्या रहे हैं और समाज तथा देश पर इसका प्रभाव क्या पड़ेगा। ये भक्जोनियें प्रकार के साहित्यकार समझते हैं कि उजाला उन्हीं के कारण है और उन्हीं से लोग प्रेरणा लेनेवाले हैं। वास्तव में ये बयान तो शराब के नशे में देते हैं और शराब पीते इसलिये हैं; क्योंकि तभी इनके साहित्य का तीसरा नेत्र खुलता है। लीप-लीपकर गन्दा करने का इन लोगों का अभ्यास पुराना है। आज तक यही करते आए हैं। कुछ लोग कहते हैं व्यक्तित्व और कृतित्व अलग-अलग होता है। चाहे जो भी यह बात कहता हो, मैं उस पर प्रश्न-चिह्न लगाता हूँ। वास्तविक धरातल पर कभी ऐसा नहीं होता। व्यक्तित्व से हमेशा कृतित्व और कृतित्व से व्यक्तित्व सँवरता-सजता या नष्ट होता है। यदि व्यक्तित्व और कृतित्व अलग-अलग है, तो यह कपट है, धोखा है, छल है और पाखण्ड है। 35 पुरस्कार लौटाने की घोषणा करनेवालों में यह सज्जन भी शामिल हैं। किन्तु नकद राशि, प्रशस्ति-पत्र और स्मृति-चिह्न अभी तक नहीं लौटाये हैं।

मुझे लगता है और मेरे बहुत आदरणीय शुभेक्षुओं ने अवगत भी कराया है कि आपकी भाषा कठोर है और आप जैसे स्वभाव और संस्कार के व्यक्ति को इससे बचना चाहिये। आदरणीय महानुभावो ! आखिर हमें भी तो पीड़ा होती है। हम भी तो मनुष्य हैं और भारतवर्ष के नागरिक हैं। इस देश, इसकी सभ्यता, संस्कृति को कुछ लोग खुलेआम गाली दें और कहें कि उनको अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता चाहिये और उनको कुछ भी करने की स्वतंत्रता है, तो हे बन्धुओ! ऐसी ही अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता चाहनेवाले अपने माता, पिता और भाई, बहन को भी गाली देते हैं और उसको सही सिद्ध करने की अमानवीय और असंवेदनशील कोशिश भी करते हैं। 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' बहुत ही डरावना, गन्दा और घटिया शब्द है। मान लीजिये किसी का मन किया, किसी की माँ का नग्न चित्र बनाने का। क्या यह स्वतंत्रता किसी को भी मिलनी चाहिये? इस देश के 'धर्मनिरपेक्षता', 'सेक्युलरिज़्म', 'तुष्टिकरण' और 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता'-जैसे शब्दों ने बहुत सत्यानाश किया है और इन शब्दों के पीछे के अर्थ का कचरा ढोनेवाले बुद्धिजीवियों ने तो समूची मानवता पर कालिख पोती है।



फिर भी अतिशय पीड़ा में निकले मेरे शब्द और उसके विन्यास किसी को उसकी पात्रता के विरुद्ध किसी भी प्रकार कष्ट पहुँचायें, तो मैं उसके लिये अग्रिम क्षमाप्रार्थी हूँ।

काशीनाथ जी के कुछ चमचे और चाकर प्रकार के लोग कहते हैं कि- इनका न तो राजनीति से कोई सम्बन्ध है और न ही अशोक वाजपेयी जी से। जबकि सत्य यह है कि वामपंथियों के इशारे पर काशीनाथ जी और उदयप्रकाश जी और काँग्रेस के इशारे पर अशोक वाजपेयी जी एवं गणेश देवी जी ने पुरस्कार वापसी के इस कुचक्र और खेल की प्लॉटिंग की है। दिल्ली में काँग्रेस के पक्ष में अशोक जी की 2014 में की गई पत्रकार-वार्ता और मोदी जी के काशी से चुनाव लड़ने की घोषणा के बाद काशीनाथ जी का मोदी जी के विरुद्ध बयान का एक ही समीकरण था और एक ही है। इसके पूर्व की सरकारों ने अनेक वर्ष से अकादमिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक क्षेत्र में कचरा डालने के लिए वामपंथियों को पाला है और देशभर में अनेक अड़्डे विकसित किए हैं। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय-जैसे ये अड़्डे अब बन्द हो रहे हैं तो इनको पीड़ा होनी तो स्वाभाविक ही है। इनको देश की प्रतिष्ठा की भी कोई चिन्ता नहीं है। *न्यूयॉर्क टाइम्स* में भी पुरस्कार वापसी की खबर छपवा रहे हैं। वापसी से अधिक ज़रूरत इनको पब्लिसिटी की है। गणेश देवी जी अब तक साहित्य अकादमी से, जहाँ तक जानकारी मिली है, सात प्रोजेक्ट्स के मद में लगभग 40 लाख रुपये ले चुके हैं और किसी का भी समायोजन और ब्योरा आज तक जमा नहीं किया है। पिछले तीन वर्ष से इस प्रकार से प्रोजेक्ट्स लेनेवालों को साहित्य अकादमी ने प्रतिबन्धित कर दिया है। तब तो हाज़मा खराब होगा न भाई ! गणेश देवी जी को देशी और विदेशी पैसा आना बन्द हो गया है। अशोक जी के साथ विदेशों में घूमना और गुलछर्रे उड़ाना बन्द हो गया है। तो अब सॉप सूँघ गया है। इन सबकी ठीक से जाँच हो गई तो... ?

कहने का तात्पर्य यह है कि पिछले लगभग एक दशक से लगातार गणेश देवी साहब को और इनके तथा वामपंथ से जुड़े आकाओं को विदेशों से करोड़ों के मोटे-मोटे चन्दे मिल रहे थे। भगवान जाने इस रकम का कितना, कैसा और कहाँ उपयोग उन्होंने किया होगा ? अब बताइये, ऐसी परिस्थिति में

अकादमी पुरस्कार लौटाने का पर्याप्त कारण तो बनेगा न ! वर्तमान केन्द्र सरकार की व्यवस्था ने कुछ को ऐसी ग़रीबी और भुखमरी की स्थिति में ला पटका है कि वे क्या साहित्य रचें, क्या भाषा के लिये काम करें और क्या अपना खर्चा-पानी चलायें और क्या सेमिनार करें? ज़ाहिर है कि चन्दे में भारी कमी से अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ख़तरे में आनी ही थी। फोर्ड फाउंडेशन और विदेशों की भारत के विरुद्ध की जानेवाली शाज़िस को नाकाम करने से लोकतंत्र का गला घुटना ही था। इसलिये इन साहित्यकारों ने सोचा कि अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता ख़तरे में है तो चंदा देनेवालों के प्रति अभिव्यक्ति के स्थान पर स्वामिभक्ति दिखाते हुए पुरस्कार लौटाने की नौटंकीभरी घोषणा कर दी जाये। इससे कम-से-कम विदेशी दानदाताओं की दृष्टि में छवि भी बनी रहेगी और देश की जनता भी यह जान लेगी कि वे प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी हैं।

अशोक वाजपेयी जी, जो रज़ा फाउंडेशन के मुखिया हैं और जिसकी सम्पत्ति लगभग 300 करोड़ है, चाहते थे कि उसका साहित्य अकादमी से कोलाबरेसन हो जाए और धींगामुश्ती चलती रहे। हम परम स्वतंत्र होकर उसके पैसे का उपयोग करते रहें। सीधे पैसा निकालने और खर्च करने में अनेक अड़चनें आती हैं। ऐसा इन्होंने दो कारणों से किया— एक तो रज़ा फाउंडेशन और खुद अशोक जी का महत्त्व बढ़ेगा और दूसरा गणेश देवी जी के प्रोजेक्ट्स के रोक के पीछे के सच की भी जानकारी मिल जायेगी। साहित्य अकादमी चूँकि स्वायत्तताप्राप्त संस्था है, उसने कामकाज में शुचिता और पारदर्शिता के मद्देनज़र अशोक जी के प्रस्ताव को पिछले साल निर्ममतापूर्वक ख़ारिज़ कर दिया। अब अशोक जी के सामने संकट है कि उस धन का क्या करें? बेतरतीब खर्च करेंगे, तो अब यह खेल चलेगा नहीं और सरकार भ्रष्टाचार के लिए छूट देनेवाली नहीं है और तकनीकी कारणों से पैसे का स्वतंत्र बंदरबाँट हो नहीं सकता। ये पुरस्कार लौटानेवाले लोग उस चोर की भाँति हैं, जो पकड़े जाने पर, पहले तो सीनाजोरी करता है, जो ये लोग अभी कर रहे हैं, और जब ठीक से चोर कस्टडी में आ जाता है और उसकी गर्दन दबाई जाती है, तो मिमियाने लगता है। धन की, लेखनी की, व्यक्तित्व और कृतित्व की चोरी अब नहीं चलेगी।

अब देखिये मुनव्वर राना जी को 20 अक्टूबर, 2015 को पाकिस्तान के

कराची में एक मुशायरे में जाना था। निःसंदेह वह बहुत अच्छी ग़ज़ल, शेर और नज़्म पढ़ते-लिखते हैं। मैं भी उनका मुरीद हूँ। पर शिकार हो गए इन धूर्तों के और अपना विदेशी मुशायरे का कार्यक्रम स्थगित कर दिया। स्थगित करने का कारण यह नहीं है कि इस समय पाकिस्तान जाने पर लोग क्या कहेंगे? बल्कि यह है कि वामपंथियों ने काँग्रेसियों के सहयोग से बाकायदा उन्हें जाने से रोका है; क्योंकि उसी दिन दिल्ली के मंडी हाउस में जनवादी लेखक संघ, प्रगतिशील लेखक संघ एवं जनसंस्कृति मंच का प्रदर्शन है। 23 अक्टूबर को साहित्य अकादमी की बैठक के मद्देनज़र भी उनकी ज़रूरत पड़ सकती है। उसमें इस समय के चर्चित शायर मुनव्वर जी नहीं रहेंगे तो तुष्टिकरण का जायका बिगड़ जायेगा। क्योंकि काँग्रेसवाद, मार्क्सवाद, साम्यवाद और सेकुलरवादी खाने का स्वाद ठीक से आयेगा नहीं। तुष्टिकरण के बिना इन चारों को खानेवाले, भोजन करते ही नहीं, उपवास पर चले जाते हैं। काँग्रेसवाद-मार्क्सवाद-साम्यवाद-सेकुलरवाद के लिये तुष्टिकरण वैसे ही है, जैसे दाल में सिरका, जैसे सब्जी में नमक, जैसे कलौंजी में गरम मसाला या खानेवाले इसलिये भी बेचैन रहते हैं जैसे मटन में प्याज। काँग्रेसवाद-मार्क्सवाद-साम्यवाद-सेकुलरवाद का तुष्टिकरण से बहुत ही गहरा रिश्ता है और इसी तुष्टिकरण के आधार पर इनका पूरा अस्तित्व निर्भर करता है। इसे हम 'कमसवाद' भी कहते हैं। जो सी-एम-एस-एस से निर्मित वादी नहीं, वादी का समेकित रूप है। तुष्टिकरण इन चारों के लिये गैस बनने पर हींग का काम करता है।

अब मुनव्वर साहब का इन लोगों ने कितना नुकसान किया- एक तो एक दिन के मुशायरे का यदि सिफ़ारिशी है तो न्यूनतम एक लाख शुल्क है और ग़ैर-सिफ़ारिशी है तो न्यूनतम 2 लाख। पाकिस्तानवाला एक लाखवाला था या दो लाखवाला, पता नहीं। इन वामपंथियों ने वह भी नुकसान करवाया, चार-पाँच दिन की ख़ास सुविधा भी चली गयी और अकादमी पुरस्कार अलग से गया। चौतरफ़ा नुकसान कराया वामपंथियों ने और मतलब निकल जाने पर दूध की मक्खी की तरह एक भलेमानस को निकालकर फेंक देंगे।

राना साहब से एन मौके पर 18 अक्टूबर की तारीख को प्रायोजित तरीक़े से अकादमी सम्मान लौटवाने के लिये केवल ऐलान कराया गया। वे

लौटाना नहीं चाहते थे। बहुत से लोग लौटाना नहीं चाहते थे, पर उनको पीछा करके और प्रलोभन देकर लौटवाने का ऐलान करवाया जा रहा है और यह कहा जा रहा, कोई सच में लौटाना थोड़े न है? इनको बताया जा रहा है कि, आपको नहीं कुछ तो मीडिया की पब्लिसिटी तो प्राप्त हो ही जायेगी। राना साहब सालभर पहले जब पुरस्कार पाये थे तो कहा था कि मेरी समझ से मेरे लिये यह बड़ा सम्मान है, जो अकादमी ने दिया है। हम इसे सिद्ध से महसूस करते हैं और महसूस करते रहेंगे। लेकिन बेचारे बहकावे में आ गये और अपनी प्रतिष्ठा खराब कर ली। पुरस्कार लौटानेवालों में कुल 35 की संख्या; अकादमी पुरस्कार और सम्मानप्राप्त लोगों की अब तक की कुल संख्या का .001 प्रतिशत भी नहीं है। इनमें से 15 ऐसे हैं जिनसे किसी-न-किसी प्रलोभन में बहला-फुसलाकर वापस कराया गया है। इसमें से 33 ऐसे हैं, जिन्होंने अभी तक पुरस्कार-राशि नहीं लौटाई है। किन्तु इसमें से कोई ऐसा नहीं है, जो पुरस्कार देनेवाली संस्था को अपने विरोध का लिखित कारण बताते हुए सीधे वापस किया हो। अनाप-सनाप बयान मीडिया में मौखिक देकर इस षड्यंत्र को अंजाम दिया है। ये आँकड़े बहुत ही दिलचस्प तस्वीर पेश करते हैं। आज चलते-चलते अशोक जी के अनन्य मित्र केकी दारूवाला का हिसाब भी कर लिया जाय। कनाट प्लेस के एक रेस्टोरेन्ट में उनके एक चेले साहित्यकार के बुलावे पर रात के खाने पर आये। उन्होंने 25-30 लोगों के बीच अबसे 2 वर्ष पूर्व भोजन करते और शराब पीते हुए कहा— दुनिया की कोई महंगी-से-महंगी शराब नहीं है, जो मैंने नहीं पी, सोचा यार! आज तुम कोई नयी ब्रांड पिलाओगे, तो चला आया, नहीं तो नहीं आता। पहली बार किसी को पाया- यथा नाम, तथा गुण। यह बात उनके खास जाननेवाले ने ही मुझे बताया।

### ( चार )

किसी के भी कृतित्व और व्यक्तित्व— दोनों की चर्चा उसको ठीक से समझने के लिये आवश्यक होती है; पर यहाँ पहले व्यक्तित्व की चर्चा कर लें, आगे कृतित्व की भी ठीक से करेंगे। अभी आरम्भ है, बहुत कुछ बाकी है। क्योंकि ये दोनों किसी भी दशा में अलग नहीं हैं। इनका केवल साहित्यशास्त्रीय विवेचन अपर्याप्त है। इस विषय का सदैव साहित्यिक-समाजशास्त्रीय-मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

ठीक-ठीक करना होता है। हम लोकल और मॉडर्न क्रिटिक के आधार मात्र पर निष्कर्ष तक नहीं पहुँच सकते। इसमें आधारभूत मार्गदर्शन आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जी की त्रिवेणी कर सकती है और किसी को बहुत विस्तृत अध्ययन करना हो तो आचार्य शुक्ल जी की ही 'चिन्तामणि' भाग एक एवं दो।

भाइयो! जितना ही आप पता लगायेंगे; उतना ही मामला इतना पेंचीदा होता जा रहा है और सामान्य आदमी तो दिन में अनेक बार चक्कर खाकर गिर जायेगा, उसका गैस सर चढ़ जायेगा। मैं तो भूगोल का विद्यार्थी हूँ। पर साहित्य, दर्शन और भारतीय संस्कृति में रुचि बहुत अधिक है। इसलिये सूचनाएँ तो मिल ही जाती हैं। वैसे तो अशोक वाजपेयी जी! उदय प्रकाश जी से उम्र में बड़े हैं, पर राजनीतिक-साहित्यिक दुष्प्रक्र दोनों लोगों ने लगभग एक ही साथ शुरू किया है। यह अलग बात है कि अशोक जी खिलाड़ी बड़े हैं। क्योंकि वे काँग्रेसी संस्कृति के उत्पाद हैं और उदय जी वामपंथी। ध्यान रहे उदय जी खिलाड़ी छोटे इसलिये नहीं हैं कि वे कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इण्डिया के कार्ड होल्डर रहे हैं। बल्कि इसलिये हैं; क्योंकि वे झगड़ालू अधिक हैं। जबकि अशोक जी कहीं से भी तेल निकालना बखूबी जानते हैं। उदय जी के कैरियर का ग्राफ़ चढ़ा ही इसलिये; क्योंकि वे कम्युनिस्ट पार्टी के सक्रिय सदस्य थे। जब वे 1976-'77 में सागर विश्वविद्यालय, मध्यप्रदेश से हिंदी-साहित्य में एम०ए० करके जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में पीएच० डी० करने आये थे। उनकी नियुक्ति का आधार ही कार्ड-होल्डर होना था और इसीलिये वहाँ इनको हाथों-हाथ लिया गया तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली में इनकी नियुक्ति असिस्टेंट प्रोफेसर पद पर भी हो गयी। इनके ज़िम्मे काम ही यही था कि भारतीय संस्कृति और उसका अनुसरण करनेवालों को गाली देना। इस प्रक्रिया में जे०एन०यू० में ये महोदय अनावश्यक सबसे भिड़ जाते थे। अनेक बार बेइज्जत और अपमानित भी हुए। तब इनके आकाओं में से एक हरिकिशन सिंह सुरजीत जी द्वारा एक बार कहा गया कि- तुमको वामपंथ का संस्कार ठीक से नहीं पड़ा? जिस महोदय ने मुझे यह सूचना दी; उनसे हमने सवाल किया कि संस्कार और ये लोग? ये तो 'संस्कार' शब्द को ही गाली देकर शराब में चिखने का स्वाद ले लेते हैं। फिर संस्कार ? खैर छोड़िये। ये सुरजीत जी से भी उलझ गये। तब सुरजीत जी ने बैठकर इनको बहुत समझाया और कहा कि तुम नाजीवाद और फासीवाद के

सहारे भारत में वामपंथ स्थापित करना चाहते हो, तो यह कभी नहीं होगा। क्योंकि, भारत अलग तरह का देश है। धीरे-धीरे घुसपैठ करना होगा। जैसे मन्दिर के पुजारी से मित्रता करके उसके साथ घात किया जाता है, वैसे। यहाँ हो सकता है कि इन लोगों को व्यक्तिगत जाननेवाले जिस सज्जन ने मुझे बताया; उनकी बात में भाषा और शब्द का कुछ अन्तर हो।

चूँकि हरिकिशन जी की बात आई है तो गुरुबचन जी ? खैर, उनका समाचार आगे लेते हैं। पर इनमें से किसका-किसका समाचार लिया जाय। ठीक से लीजिये तो बहुत बड़ा ग्रन्थ बनेगा, शायद इनसाईक्लोपीडिया से भी बड़ा। इसलिये कुछ छोड़ते चलते हैं। उदय जी की योग्यता ही थी कार्ड-होल्डर होना और कहते हैं कि मैं राजनीति नहीं करता? पहले मैं कह चुका हूँ कि पुरस्कार वापस करने का पूरा प्लान काँग्रेस की तरफ से अशोक जी-गणेश देवी जी और वामपंथ की तरफ से काशीनाथ जी-उदय प्रकाश जी ने ही बिछाया है। काँग्रेस ने हमेशा वामपंथ को पाला है; क्योंकि, काँग्रेस अपने आरम्भिक काल से ही वामपंथ और पूँजीवाद की दुविधा में झूलती रही है और आज भी उसी दुविधा की शिकार है। इसी कारण काँग्रेस ने हमेशा समझौता भी किया कि कम्युनिस्ट पार्टियों के लोगों को अकादमिक संस्थानों में मौजूद करने दिया जाय और खुद सत्ता का भोग किया जाय। दोनों खुश रहेंगे और एक दूसरे को डिस्टर्ब नहीं करेंगे। इसलिए इन्दिरा गाँधी जी के कार्यकाल में शिक्षामंत्री (तब मानव-संसाधन विकास मंत्रालय नहीं था) थे नुरुल हसन जी, जो बाद में पश्चिम बंगाल के राज्यपाल भी रहे। इन्होंने और इन्दिरा जी ने उनसे कहकर वामपंथियों को प्रोत्साहित कराया, उनसे झूठी और प्रायोजित पुस्तकें लिखवायीं, और बाकायदा एन०सी०ई०आर०टी०-जैसी संस्थाओं के माध्यम से देशभर के विद्यालयों में उसे लागू करवाया। उस समय इरफान हबीब एवं रोमिला थापर-जैसे इतिहासकार, नुरुल हसन जी के प्रमुख सिपहसालार थे। किन्तु अब उदय जी निकले काँग्रेसवादी-वामपंथी या कहें तो कह सकते हैं, 'सामन्तवादी-वामपंथी' और यही इनको अशोक जी से जोड़ता है या उनके निकट ले जाता है। उदय जी अशोक जी के निकट इसलिये भी अधिक हो लिये; क्योंकि वामपंथ की मंशा ही रही है कि, भारतीय साहित्य में भारतीय संस्कृति के सबसे ज़ोरदार पोषक विद्यानिवास जी के विषय में और उनके साहित्य के विषय में अशोक जी कुछ बतायेंगे; जिससे भारतीय संस्कृति को और अधिक



गाली दी जा सकेगी ।

जे०एन०यू० में लड़ाई करके उदय महोदय मध्यप्रदेश संस्कृति मंत्रालय में डेपुटेसन पर कार्य करने चले आये और रवीन्द्र भवन, भोपाल में कार्यभार ग्रहण कर लिया । अब भारत भवन-रवीन्द्र भवन या यों कहें, अशोक भवन और उदय भवन की संलापपूर्ण निकटता आरम्भ हुई । वैसे जब आप उदय जी की रचनाओं को पढ़ेंगे, तो पूरी तरह दिग्भ्रमित हो जायेंगे कि, वास्तव में इनका विचार क्या है ? और ये कहना क्या चाहते हैं ? बहुत की नहीं, पर एक का जिक्र यहाँ कर दूँ; जो कहानी 'वारेन हेस्टिंग्स का सांड' हमने पहली बार अबसे लगभग 18 वर्ष पूर्व पढ़ी थी । आप जब पढ़ेंगे तो ऐसा लगेगा कि ये कोई मनोरोगी हैं या काँग्रेसी हैं या वामपंथी हैं या भारतीय हैं या विदेशी हैं ? आदि । इनका रहन-सहन और वैभव, इनका संस्कार और संस्कृति इनकी कुण्ठा का प्रमाण है । 21वीं शती का पहला दशक बहुत महत्त्वपूर्ण है और विस्तृत चर्चा की मांग करता है । जिस राजा फाउंडेशन के मुखिया अशोक जी हैं । उसके मुखिया बनने की जोड़-तोड़ अशोक जी से पहले उदय जी कर चुके हैं । सैयद हैदर राजा जी से अपने मध्यप्रदेशी दमोह-सहडोल संबंधों के आलोक में । दोनों का दावा है कि पहले हम, राजा जी को जानते हैं । पर सत्य यह है कि अशोक जी पहले से जानते रहे हैं । जैसा कि पहले मैं कह चुका हूँ, अशोक जी बड़े खिलाड़ी हैं इसीलिये वे राजा जी-जैसे तटस्थ व्यक्ति को प्रभावित करने में सफल रहे । किन्तु मध्यप्रदेश का होने और तुष्टिकरण के कारण उदय जी, राजा जी पर अपना हक अधिक मानते थे । परन्तु हक तो उसका होता है; जिसको देनेवाला दे । यह भी उदय जी की कुण्ठा का कारण रहा है । पर दोनों के सह-मात का खेल चलते हुए भी आपसी सम्बन्ध सामान्य हैं; क्योंकि दोनों लोग कहीं-न-कहीं एक दूसरे के काम आते हैं । बन्धुओ ! कुल मिलाकर जितना इन लोगों का घनचक्कर है; वह इन्द्रानी मुखर्जी के प्रकरण से भी अधिक जटिल है और शायद इसकी नाप-तौल करने में वे भी कोमा में चली जायं । क्योंकि ये सभी उसी संस्कृति के हिस्सा हैं ।

( पाँच )

राजनीति भी गजब की चीज है । जो नहीं जानता है, वह भी कर सकता है और जो

जानता है, वह तो कर ही सकता है। जिसको अपने निर्णय पर बार-बार पछताना पड़े, समझिए की वह मूर्ख राजनीतिज्ञ है और जो पछताता नहीं है, उसके निर्णय का दूरगामी परिणाम होता है, वह समझदार। इसीलिये अंग्रेजी-साहित्य में शेक्सपीयर ने अपने एक नाटक *ट्वेल्थ नाइट* में कहा- बुद्धिमान मूर्ख, मूर्ख बुद्धिमान से अच्छा होता है। अब जैसे केजरीवाल जी फोर्ड फाउंडेशन के पैसे से राजनीति करके परेशान हैं या राहुल जी किसी विदेशी ..... से आपसी लगाव के कारण और राजनीति की गाड़ी के पटरी पर न आने से परेशान हैं या प्रियंका जी ही अराजनीतिक और केवल भ्रष्टाचार फैलानेवाले अपने ..... से परेशान हैं या सोनिया जी अपने भाषाशास्त्रीय हिंदी के ज्ञान से परेशान हैं। वैसे ही पुरस्कार लौटानेवाले, अपना पुरस्कार लौटाने की घोषणा करके परेशान हैं। अब उनको लगने लगा है कि उनसे ग़लती हो गई है और आगे भी होगी। आगे यह ग़लती जारी रखना चाहते हैं; क्योंकि अपनी अयोग्यता को प्रमाणित किए बिना, ग़लती मानना अदूरदर्शी आदमी के लिए बहुत मुश्किल होता है, वह धैर्य नहीं रख पाता है। दूरदर्शी आदमी, ग़लत मार्ग को इशारे मात्र से समझ लेता है और अपना मार्ग सही कर लेता है। परन्तु नासमझ इसलिये नहीं मानता है; क्योंकि उसको कुटिलतापूर्वक कुछ पाने का लोभ बना रहता है और जुए के अन्तिम दौंव तक अपना सबकुछ खो देता है।

अशोक जी या गणेश जी या उदय जी या काशीनाथ जी या राना जी और जितने भी जी लोग हैं, अब इस संकट में हैं कि यदि हम खुद बैकफुट पर आते हुए दिखे तो हमेशा के लिये सोनिया एण्ड कम्पनी या वामपंथ एण्ड कम्पनी, हमसे तोबा कर लेगी और हम कहीं के नहीं रहेंगे एवं राज्यसभा क्या हमें किसी टाउन एरिया का पार्श्व भी सरकार मनोनीत नहीं करेगी। अभी इनमें बहुत कुछ पाने की ख्वाहिश बाकी है। पर सबको इनका सत्य जानना तो ज़रूर चाहिये। सबसे जल्दी यह बात समझ में आ गयी नयनतारा जी को और उन्होंने 19 अक्टूबर, 2015 की तारीख को यह बयान दिया कि यह देश केवल हिंदुओं का नहीं है, समूचे हिंदुस्तानियों का है। यह अहंकारपूर्वक बैकफुट पर जानेवाला बयान है; क्योंकि अब इन लोगों की छीछालेदर बहुत हो चुकी है। लगता है कि सहगल जी को यह बात अब पता चली है? अरे भाई जैसे जापान में रहनेवाला जापानी, अमेरिका में रहनेवाला अमेरिकन, चीन में रहनेवाला चीनी; वैसे ही

हिंदुस्तान में रहनेवाला हिन्दुस्तानी ! उनकी इस बात को कब किसी ने मना किया या खारिज किया है ? यह तो होना ही चाहिये । यदि यही बात थी तो सहगल जी ने पुरस्कार लौटाया क्यों ? कोई विरोध था तो, उस या इस आशय का लिखित पत्र मिलकर या प्रत्यक्ष अपनी बात कहतीं; पर नहीं, एक ओर नेहरू परिवार का होने का अहंकार और दूसरे कुछ चाटुकार टाइप के साहित्यकारों के बहकावे में आकर वापस कर दिया कि हम वापसी की शुरुआत करेंगे तो विरोध का माहौल ज़रा ज़ल्दी बनेगा और अशोक जी जैसों की राजनीति या तो वे समझ नहीं पायें या समझकर भी अहंकार ने उन्हें समझने नहीं दिया ।

हाँ, हम कह रहे थे कि जो भी अपने हिंदुस्तान की मातृभूमि की मिट्टी का माथे पर तिलक करे, उसकी जयकार करे, वे सभी हिंदुस्तानी । परन्तु यह नहीं चलेगा कि इस देश में रहकर आप पाकिस्तानी झण्डा लहरायें, भारतमाता को डायन कहें, दूसरे की आस्था पर कुठाराघात करें; चीनपरस्ती दिखाकर उसे नेपाल पर कब्जा कर लेने और फिर भारत को हड़पने की कोशिश में सहयोग करें । ऊँट की चोरी निहुरे-निहुरे, नहीं चलेगी । यदि आपको देश में किसी बात के लिये कष्ट है तो उचित मंच पर उठाइये, विद्वेष मत फैलाइये; झूठी और असंगत बातें मत फैलाइये । कलबर्गी जीवनभर केवल पूर्वाग्रहपूर्वक विद्वेष फैलाते रहे और वे साहित्य के पुरोधा हो गये ? यह नहीं चलेगा । हाँ, निश्चित रूप से उनकी हत्या निन्दनीय और कष्टकारक है; यह अलग बात है । यह भी अनावश्यक और झूठ ख़बर फैलाई गई कि, साहित्य अकादमी की तरफ से शोक नहीं व्यक्त किया गया । जबकि बाकायदा अध्यक्ष जी की उपाध्यक्ष जी से फोन पर वार्ता हुई और बेंगलूरु में शोकसभा हुई; उपाध्यक्ष जी न केवल शोकसभा में थे, बल्कि शोक व्यक्त करने अकादमी की ओर से उनके घर भी गये और यह सब अकादमी के मिनट में दर्ज है । वापस करनेवालों ने केवल और केवल झूठा विषवमन किया है और दोष दूसरों को देते हैं ।

यदि ये अज्ञानी हैं तो किसी योग्य शिक्षक को रखकर वेदादि ग्रंथों का मूल रूप में अध्ययन कर लें । जिसने वेद देखा ही नहीं और न देखने की कोशिश की, उनके बताये आधार पर उसके विषय में पूर्वाग्रह पालकर इस देश को बर्बाद न करें । मुनव्वर राना जी का भी बयान नयनतारा जी से जोड़कर देखना चाहिये

कि, प्रधानमंत्री जी कहें तो वापस कर लूँ। पर यह खेल रचनेवालों को लगा कि, इनसे काम नहीं चलेगा; मामला रफ़ा-दफ़ा करने ले लिये और लोगों को लगाना चाहिये। अब इनकी इतनी छीछालेदर हो चुकी है कि अब ये वापस होना चाहते हैं। ऐसे ही रहा तो कुछ दिन में मुँह दिखाने लायक नहीं रहेंगे। आदरणीय नामवर सिंह जी का बयान इसी कड़ी का हिस्सा है। इनके विषय में मैं कुछ नहीं कहूँगा; क्योंकि मैं इनका बहुत आदर करता हूँ। यहाँ पर शेक्सपीयर जी की एक और बात का ज़िक्र कर दूँ। कुछ लोग जन्म से नामवर या महान् होते हैं; कुछ लोग अपने कर्म के द्वारा नामवर बनते हैं और कुछ लोगों पर नामवरता लाद दी जाती है। गोपालदास नीरज जी का बयान भी इसी राजनीति का हेतु है। किन्तु निश्चित ही नीरज जी राजनीति नहीं कर रहे हैं। वे कोई पक्षकार भी नहीं हैं; किन्तु वापस करने का षड्यन्त्र रचनेवालों ने ही उन्हें सब कुछ ठीक करने को कहा है और वे ऐसा कर रहे हैं तो निश्चित ही बहुत अच्छा है। नीरज जी और नामवर जी के कार्य से और कुछ हो चाहे न हो; पर साहित्य जगत् का भला ज़रूर होगा और वापसी करनेवालों के कारण गिरी या खोई प्रतिष्ठा लौटेगी। हाँ, पर छद्म लोगों की सच्चाई उजागर करने का कार्य रुक-रुककर ही सही, चलता रहेगा। क्योंकि यदि ऐसा नहीं हुआ तो आगे भी ये लोग देश का बहुत नुकसान करेंगे।

( छ: )

तिलक जी ने मुस्लिम लीग की स्थापना की मांग उठाने के साथ ही एक बार कहा था कि- राजनीति हमेशा व्यापक जनभावना और जनसमूह के अनुसार सञ्चालित होनी चाहिये और वही राजनीति और व्यवस्था की नियामक भी होनी चाहिये। हाँ, छोटे समूह की भावनाएँ आहत न हों, इसका ध्यान व्यापक समूह को रखना ज़रूरी होता है। इसी बात को अम्बेडकर जी ने थोड़े भिन्न रूप में 1942 की स्थिति के उपरांत कहा था कि, राजनीति बहुमत का नाम है और इसी आधार पर व्यवस्था और सत्ता चल सकती है। बहुमत की भावनाओं की उपेक्षा किसी भी समाज और देश का बहुत नुकसान कर सकती है। इसी बात को हजारों वर्ष पूर्व गुरु वसिष्ठ जी ने राजा दिलीप जी को नन्दिनी की सेवा करने के हेतु के साथ बताया था। सत्य एक ही होता है, श्रेष्ठ लोग उसे भिन्न-भिन्न तरीक़े से व्यक्त करते हैं— ‘एकं

**सद्विप्राः बहुधा वदन्ति**। भारतवर्ष में लगभग सत्तर वर्ष की आज़ादी के बाद और आज़ादी से पूर्व इस भावना और विचार का पूरा उल्लंघन हुआ है। व्यापक समूह की भावनाओं की व्यापक उपेक्षा हुई है और लघु समूह ने हमेशा व्यापक समूह की भावनाओं को आहत किया है और अपशब्द बके हैं। पुरस्कार लौटाने के पीछे की साज़िश बहुत ही विकट और भयावह है। इसमें वेटिकन सिटी से लेकर रोम तक; बीजिंग से लेकर भारतीयता के विरोधी स्वरों का बड़ा हाथ है। भारत चूँकि अब बहुत तेज़ी से आगे बढ़ रहा है, भारत में विद्वेष फैलाने की बहुत बड़ी साज़िश रची जा रही है। यहाँ के सौहार्द को नष्ट करने का कुचक्र रचा जा रहा है। इस देश में कुछ लोग ऐसे हैं, जो अपने स्वार्थ, लालच और पद के लिये अपना ईमान, धर्म, चरित्र और अवसर मिल जाय तो देश ही बेच देंगे। पुरस्कार वापसी के पीछे ऐसी ही देशविरोधी शक्तियाँ लगी हुई हैं।

दुनियाभर में कहा जाता है कि यदि संगीत, कला, संस्कृति और साहित्य को ठीक से सीखना और जानना हो तो काशी को जानिये, समझिये एवं उसका व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना हो तो धारवाड़ को ठीक से जानिये और समझिये। हम्पी विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एम०एम० कलबर्गी जी जिस धारवाड़ में रहते थे; वह लिंगायत बहुल आबादी है और कलबर्गी जी विगत पैंतालीस वर्ष से यहीं पर रहकर सबको गाली देते आए हैं। 77-वर्षीय कलबर्गी जी की पृष्ठभूमि नेहरूवियन समाजवाद से प्रेरित वामपंथ थी और ये महोदय नेहरू जी के न रहने के बाद इन्दिरा गाँधी जी के विचारों से असहमत होते हुए छठे दशक के अंत में कम्युनिस्ट कार्ड-होल्डर बने। इस पुरस्कार वापसी का संरचना समझना जवाहरलाल जी और शेख अब्दुल्ला जी के संबंधों को ठीक से समझ जाने से भी जटिल है। इस देश में ग़लतफहमी पैदा करके, उसका राजनीतिक लाभ लेना और प्रपञ्च करना धन्धा जैसा हो गया है। यह टूटना, समाप्त और नष्ट होना चाहिये।

जिन दो कारणों से पुरस्कार लौटाने का दुष्कर्म शुरू हुआ है, उसमें से एक घटना कर्नाटक की है जहाँ काँग्रेस की सरकार है और एक घटना उत्तरप्रदेश की, जहाँ समाजवादी पार्टी की सरकार है और यह सभी जानते हैं कि किसी भी संघशासित राज्य में क़ानून-व्यवस्था पूरी तरह राज्य का विषय है, यदि चुनी हुई सरकार है तो। केन्द्र, राज्य सरकार के आग्रह पर ही हस्तक्षेप कर सकता है।

धारवाड़ रेलवे स्टेशन से बमुश्किल 40 किलोमीटर दूर एक पहाड़ी गाँव है 'कलकेरी'। छोटा-सा गाँव, आसपास की आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे जीवन-यापन करनेवालों की। चिकित्सा और शिक्षा से काफी दूर। इस गाँव में एक अविवाहित जर्मन डेविड जॉनसन, यदि नाम भूल नहीं रहा है, तो यही नाम है, ने काशी से संगीत की व्यापक शिक्षा ग्रहणकर भारतीय संगीत की सेवा का व्रत लिया और 1979 में कलकेरी में पहाड़ी पर आकर ग़रीब बच्चों को संगीत की शिक्षा देने के उद्देश्य से इन्होंने 'कलकेरी संगीत विद्यालय' खोल दिया। मैं न सिर्फ़ इस विद्यालय में गया हूँ, बल्कि इस विद्यालय के संस्थापक डेविड जी से दो बार मिला भी हूँ। एक बार चार घंटे के लिये और एक बार दिनभर के लिये। डेविड साहब के पास जितनी पूँजी थी, सब विद्यालय में लगा दिया। आसपास के ग़रीब बच्चों को विद्यालय में रखते हैं। उनके निःशुल्क भोजन, शिक्षा और चिकित्सा की चिन्ता करते हैं और ऐसी देखभाल करते हैं कि बच्चे अपने माँ-बाप को भी याद करना भूल से जाते हैं। स्वयं इनके पास संगीत का बहुत ही विशद और व्यापक ज्ञान है; पर इनका खुद का अधिकांश समय विद्यालय के लिए लोगों से माँग-माँगकर संसाधन जुटाने में व्यतीत हो जाता है। फिर भी ये दिन में लोगों से सहयोग लेने के लिये चलते रहते हैं और रात में देर तक जगकर बच्चों को संगीत की शिक्षा देने में व्यस्त रहते हैं।

अपने आरम्भिक दिनों में इन्होंने विदेशों से काफी फंड अपने विदेशी संबंधों का उपयोग कर, लेने का जी-तोड़ यत्न किया। इनको विदेशों से पैसा न मिलें, राज्य सरकार और अन्य बाहरी लोग व्यापक सहयोग न करें, इसके लिए कलबर्गी जी ने जो भूमिका निभाई है, उसकी निश्चित ही व्यापक जाँच होनी चाहिये। धुन के पक्के इस जर्मन ने बिना किसी बड़े सहयोग के, हर कीमत पर विद्यालय को सञ्चालित करने की मंशा को आज तक कायम रखा है। इस व्यक्ति की भारत, भारतीयता और भारतीय संगीत के प्रति प्रेम और लगाव अद्भुत है। दो-तीन वर्ष में डेविड साहब जर्मनी जाते हैं और निवेदनपूर्वक कुछ समय के लिए निःशुल्क सहयोग करने के लिये वोलेंटियर या स्वयंसेवक ले आते हैं और एक निश्चित समय की सेवा देकर वे स्वयंसेवक लौट जाते हैं। लाख विरोध के बाद भी वह विद्यालय चल रहा है तो निश्चित ही सहयोग करनेवालों का सहयोग मिल रहा ही होगा। कलबर्गी जी ने इनका अपने लोगों से बहुत विरोध कराया है और यहाँ



तक कहा है कि, चले हैं भारतीय संगीत की शिक्षा देने। भारतीय संगीत का मतलब होता है 'डॉग्स डंक'। यह है दुनिया की सर्वश्रेष्ठ भाषा और संस्कार। चर्चा तो चलती रहेगी; लेकिन जाते-जाते इतना जान लीजिये। कलबर्गी जी खुद को मारने के लिए प्रायोजित तरीके से धमकीभरे पत्र और इशतहार दिलवाते थे और उसके दूसरे दिन बयान देते थे— "मैं इससे डरनेवाला नहीं हूँ।" इनके लगातार भारतीयता के विरुद्ध विषवमन के बाद भी पैतालिस वर्ष से अब तक इनको किसी ने कुछ नहीं कहा।

इन्होंने अपने एन०जी०ओ० के लिये विदेशों से और देश से जितना सरकारी और गैर-सरकारी पैसा लिया है, वह सैकड़ों करोड़ में है। इनके इंजीनियर दामाद की लगभग 2 वर्ष पूर्व हत्या हुई थी, उसकी तह में भी जाने की आवश्यकता है। अपने 70 एकड़ के फार्म हाउस में से दामाद को काफी हिस्सा देने का आश्वासन और फिर मुकर जाना। उसी ज़मीन के लिये खुद के भाइयों से इनका विवाद और इनके भाई की काँग्रेसी पृष्ठभूमि की जाँच पता नहीं कौन-कौन सी परत खोले। वास्तविकता धीरे-धीरे ही सही, आ रही है कि इनकी हत्या सम्पत्ति के विवाद से अधिक जुड़ी हुई है। अकादमी पुरस्कार वापसी के पीछे का राजनीतिक खाका काँग्रेसियों और वामपंथियों ने बुना है; सोचकर, देखकर और जानकार रोंगटे खड़े हो जाते हैं। अशोक जी, उदय जी, गणेश जी, सहगल जी और काशीनाथ जी तो प्यादे हैं; जो छोड़े गए हैं। इनको पता होना चाहिये, यह देश हिंदुस्तान है, यहाँ खुद षड्यन्त्र रचनेवाले अपनी समाप्ति की इबारत खुद रच डालते हैं।

इन साहित्यकारों को क्या नाम दिया जाय, समझ में नहीं आता। इस पुरस्कार वापसी की पूरी योजना रचनेवालों पर तो और भी तरस आता है। अब जबकि दुनियाभर में भारत को संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सदस्यता की सहमति बन सी गयी है, पिछले लगभग एक साल से चीन का भारत-विरोधी स्वर बहुत मुखर हो गया है। भारत-विरोधी मुहीम का नेतृत्व चीन की कम्युनिस्ट पार्टी के महासचिव और वहाँ के राष्ट्रपति ली जिनपिंग खुद कर रहे हैं। इसके लिये चीन ने संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् के बीते अध्यक्ष जान येश को दिसम्बर 2014 में एंटीगुआ में, उनके निजी व्यापार को बढ़ाने के लिए 13 लाख डॉलर का घूस

दिया, ताकि या तो भारत का संयुक्त राष्ट्र संघ में स्थायी सदस्यता का प्रस्ताव तकनीकी रूप से न आ सके और आ भी जाय तो पास न हो सके। चीन अब तक के अपने इस कुकर्म और इस प्रयास में सफल रहा है। भारत की आन्तरिक देशद्रोही शक्तियाँ भी छुपे तौर पर चीन का साथ दे रही हैं और सूचनाएँ लीक कर रही हैं। इसी उद्देश्य से चीन नेपाल को लगातार साधने की कोशिश भी कर रहा है।

इस मुहीम को आगे बढ़ाने के उद्देश्य से ली जिनपिंग ने इंग्लैंड की अभी हाल ही में 18 से 21 अक्टूबर, 2015 को यात्रा की है और यह यात्रा इसलिये की गई, क्योंकि बी०बी०सी० के हवाले से एक सर्वेक्षण-रिपोर्ट प्रकाशित की गयी, जिसमें कहा गया था कि दुनिया का सबसे असहिष्णु देश चीन है और वहाँ मानवाधिकार की स्थिति दुनिया में सबसे बदतर हालत में है। इंग्लैंड सरकार ने भी इस रिपोर्ट को स्वीकार करते हुए बयान जारी कर दिया। तब भागे-भागे जिनजिंग जी लन्दन गये और डेविड कैमरून जी के साथ न केवल कई चक्र की वार्ता की, बल्कि इंग्लैंड को खुश करने के लिए 43 अरब डॉलर के व्यापारिक समझौते पर हस्ताक्षर भी किये। घूसखोरी का यह अंदाज़ हर क्षेत्र में भारत को नीचा दिखाने का है। आनेवाले समय में भारत और चीन दो महाशक्तियाँ बनेंगे। शीतयुद्ध चलेगा। भारत को आन्तरिक और बाहरी— दोनों देशविरोधी शक्तियों से निकट भविष्य में सावधान रहना होगा और ज़रूरत पड़ने पर निपटना होगा।

नेपाल भारत का पड़ोसी देश है। वहाँ ऊपर से नीचे या उत्तर से दक्षिण या पहाड़ या पहाड़ से मैदान के क्रम में तीन प्रकार के लोग रहते रहे हैं— गोरखाली, नेपाली और मल्लेशी। गोरखालियों को मूल रूप से पहाड़ी मानते हैं और इसलिए उन्हें नेपाल का भी मूल नागरिक मान लेते हैं। नेपालियों को ही वहाँ का मूलवासी कहते हैं और मल्लेशियों को मूलतः भारतीय; जो जाकर नेपाल बस गए हैं और वहाँ के नागरिक हो गए हैं; ये मल्लेशी सैकड़ों वर्ष से वहाँ के मूलवासी हैं। भारत और नेपाल के बीच सैकड़ों वर्ष से ऐसा संबंध भी है, जिससे वे पूरी तरह रच बस गए हैं। भारत में भी उससे कई गुणा नेपाली समूचे उत्तर भारत में रहते हैं। चीन हमेशा से ही भारत और नेपाल के बीच ‘दो ज़िस्म-एक जान’ के आपसी रिश्ते से जल और ईर्ष्या रखता है।

वामपंथी और कम्युनिस्ट, चीन के निर्देश पर; पहले तो नेपाल के सामान्य लोगों में यह झूठा एवं कुटल प्रचार करने में सफल रहे कि हम राजतंत्र को हटाकर जनता का शासन स्थापित करना चाहते हैं, आप सब सहयोग कीजिये। जब भोली-भाली जनता को यह बात समझ आ गयी, तो इन समाज, देश, एवं नेपाल-द्रोहियों ने तीन काम किया— 1. नेपाल के राजपरिवार में फूट डाली और ज्ञानेन्द्र और पारस को प्रलोभन दिया कि आप हमलोगों के कार्य में सहयोग कीजिये; नेपाल की राजशाही आपके हाथ में आ जायेगी। एकसाथ परिवार के 9 लोगों की हत्या के पीछे का मूल कारण यही था। 2. गोरखाली-नेपाली, नेपाली-मद्धेशी एवं गोरखाली-मद्धेशी के बीच आपस में राष्ट्रीयता, नागरिकता एवं अधिकार को लेकर वैमनस्य और कटुता फैलायी। 3. मद्धेशियों में यह कहकर फूट डाला कि हमारा साथ दो, तो हम तुम्हारा साथ देंगे और नेपाल में तुम्हारी नागरिकता, अधिकार— सबकुछ सुरक्षित रहेगा। जिनको यह बात समझ में आ गयी, उनको आतंकवादी या माओवादी आदि प्रकार के गिरोह में शामिल कर लिये; जो बच गये, उनको नेपाल-विरोधी करार देकर, उन्हीं के खिलाफ उन्हीं के लोगों से आन्दोलन शुरू करा दिया और मद्धेशी-समूह आपस में ही लड़ने लगे। ....इन सभी प्रकार की गतिविधियों को करते हुए, हमेशा से भारत-विरोध का भाव बुलन्द रखा। इन वामपंथियों ने पहले से ही घोषित लड़ाके गोरखालियों का ठीक से दुरुपयोग किया और वे इनके झाँसे में अपनी कमज़ोर आर्थिक स्थिति के कारण आ गये। क्योंकि उनको तत्काल अपनी स्थिति ठीक करने का आसान उपाय प्रतीत हुआ। यही क्रिया चूँकि ये वामपंथी/नक्सली ऊपरी असम, सिक्किम और ऊपरी पश्चिम बंगाल में कर चुके थे, जहाँ गोरखा-बहुल आबादी है; इसलिए इनको अपना समीकरण साधने में आसानी हुई। दिखावे के लिए सबको एक कर नेपाल में रह रहे लोगों को उन्नति का सब्जबाग दिखाकर बर्गलाते, तोड़ते रहे और नेपाल को अस्थिर करते रहे। क्योंकि इनकी योजना ही यही थी कि जितना ही नेपाल कमज़ोर होगा और भारतविरोधी स्वर प्रबल होगा, नेपाल को चीन के निकट ले जाना आसान होगा। स्वयं तीनों समूह की नेपाली जनता और भारत, इस दुष्चक्रपूर्ण खेल को ठीक से समझते, तब तक देर हो चकी थी और नेपाली जनता, जो इनके झाँसे में थी, उससे निकल पाना उनके लिए आसान नहीं था। भारत की इससे पूर्व की सरकारों ने ठीक से

समझने का प्रयास भी नहीं किया। चीन किसी भी कीमत पर तिब्बत के बाद नेपाल को अपने अधिकार एवं प्रभाव-क्षेत्र में, भारत को अस्थिर करने के लिए, लेना चाहता है। यद्यपि चीन की स्वयं की आन्तरिक सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति बहुत खराब है; वह किसी भी दशा में इस स्थिति के जगजाहिर होने से पहले अपने सस्ते और घटिया सामान को फैलाकर अपने उद्देश्य को पूरा कर लेना चाहता है और इसी कारण इस कार्य में तेजी से लगा हुआ है। प्रसंगवश यहाँ यह चर्चा करनी ज़रूरी थी।

कलबर्गी जी से जुड़ी सभी बातों की विस्तृत जाँच की आवश्यकता है। उनकी हत्या के कारणों की, उनकी हत्या के पीछे लगे लोगों की और उनकी हत्या के पीछे की पृष्ठभूमि और साज़िश की। इतना ही नहीं उनकी हत्या के पूर्व और बाद में की गई राजनीति की भी व्यापक जांच की आवश्यकता है। यह ऐसा विषय नहीं है कि इसे हलके में लिया जाय। वास्तविकता सबके सामने आनी ही चाहिये और जो भी जिस रूप में दोषी हो, उसको बेनकाब होना चाहिये। चोरी और सीनाज़ोरी— दोनों नहीं चलेगी। कलबर्गी जी अच्छे साहित्यकार थे, बुरे साहित्यकार थे, उनके विचार अच्छे थे या बुरे थे— यह अलग चर्चा और बहस का विषय है। परन्तु उनकी हत्या हुई, यह बहुत ही खराब बात है और इसका सच सामने आना ही चाहिये। एक नेता जी थे, उनकी असंगत हरकतों से जब उनका कोई अपना ही परिचित या खास दूर होने लगता था, तो वे खुद ही उसके घर में आग लगवा देते थे और सबसे पहले सांत्वना देने पहुँच जाते थे। उस आदमी को बताते थे, हमसे तुम्हारी थोड़ी-सी दूरी क्या बढ़ी, दुश्मन हावी होने लगे; यह मैं होने नहीं दूँगा और देख लूँगा। सहायता में कुछ रुपये भी दे देते। वह आदमी और परिवार फिर दीवानी-मस्तानी की तरह उनके पीछे-पीछे टहल बजाने लगता।

एक और बात। अकादमी पुरस्कार से जुड़े उन सभी लोगों की गतिविधियों और सम्पत्ति की भी जाँच होनी चाहिये, जिन्होंने अकादमी पुरस्कार प्रायोजित राजनीति के कारण वापसी की घोषणा की है। इसकी राजनीतिक सच्चाई की भी। हद तो यह है कि अब तक लगभग 1,250 लोगों को अकादमी का मुख्य पुरस्कार मिला है। इसमें से लगभग 700 लोग अभी जीवित हैं और इसमें से मात्र 35 ने पुरस्कार वापसी की मीडिया में आकर घोषणा की है। इनकी

बचकानी मंशा का अंदाज़ा इस बात से भी लगा सकते हैं कि 31 अक्टूबर, 2015 तक मात्र 2 ने अकादमी को चेक लौटाए हैं और प्रशस्ति-पत्र तो किसी ने भी नहीं लौटाए हैं। दबाव बनाने का यह राजनीतिक खेल है। गौरतलब यह है कि इसमें से कोई भी कलबर्गी जी की हत्या की व्यापक और उच्चस्तरीय जाँच की मांग नहीं कर रहा है। इसमें से किसी को इस बात की चिन्ता नहीं है कि कलबर्गी जी या अखलाख को न्याय मिले। चिन्ता इस बात की है कि इसी भरोसे कितनी राजनीति हो सके और केन्द्र सरकार की बुराई हो सके, विगत में किए गए घोटाले और वर्तमान केन्द्र सरकार द्वारा उसकी जाँच से लोगों का ध्यान हटाया जा सके। इस खेल की योजना ठीक उस समय तैयार की गई जब *इण्डियन एक्सप्रेस* और *यंग इण्डिया* में किए गए काले कारनामों की सच्चाई तथा काँग्रेसी-सोनियागिरी और राहुलजी के कार्य सामने आ रहे थे। इसमें नाहक वयोवृद्ध काँग्रेसी नेता मोतीलाल वोरा जी भी फँस रहे हैं। यह बहुत ही शर्मनाक राजनीति है, जो साहित्यकारों के माध्यम से प्रायोजित की गई है। इसके पीछे खेल में शामिल कौन है, यह बात अलग है। साहित्यकारों को मूर्ख बनने की राजनीतिक साज़िश से बचना चाहिये; जो लालची लोग नहीं कर सकते।

ऊपर कही गई बात के पीछे के ऐतिहासिक तथ्य की तरफ हम आपका ध्यान दिलाना चाहते हैं। जवाहरलाल जी की बहन विजय लक्ष्मी पण्डित जी का जन्म 1900 में हुआ और 1990 में दिवंगत हुई। गुजरात में उनका विवाह हुआ। स्वतंत्रता आन्दोलन में उन्होंने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। कई बार जेल भी गयीं। एक बार तो लगातार ढाई वर्ष जेल में रहीं, जब नयनतारा जी मात्र 15 वर्ष की और लक्ष्मी जी 42 वर्ष की थीं। देश की पहली महिला कैबिनेट मंत्री और संयुक्त राष्ट्र संघ की पहली महिला अध्यक्ष भी रहीं। इसका अध्यक्ष एक वर्ष अर्थात् एक सत्र के लिए होता है। यह तारीख दिसम्बर की किसी तारीख से आनेवाले दिसम्बर की ही किसी अगली तारीख तक के लिए होती है। इन्होंने निःसंदेह बहुत अच्छा काम किया। इनकी पुत्री नयनतारा जी की प्रत्यक्ष राजनीति में कोई बहुत रुचि नहीं थी। किन्तु माँ को तो विरासत में मिली थी, रुचि भी थी और सक्रिय भी बहुत थीं। काँग्रेस की सक्रिय राजनीति में थीं; किन्तु इन्दिरा गाँधी जी को बहुत पसन्द नहीं करती थी। इसीलिये जवाहरलाल जी के न रहने के बाद मतभेद बढ़ते गये। फिर भी लक्ष्मी जी ने उसे उजागर नहीं होने दिया। किन्तु सत्य इतना प्रतापी

होता है कि देर से ही सही, सामने आता ही है।

दैवयोग, दुर्योग या संयोग या प्रयोग कहिये, इन्दिरा जी ने देश में आपात स्थिति लागू कर दी। सबके अधिकार या तो छीन लिये गये या सीमित कर दिये गये। इसमें सिद्धार्थ शंकर राय जी की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण थी। सिद्धार्थ जी बाद में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री और अमेरिका में भारत के राजदूत भी रहे। प्रेस पर भी सेंसर लगा दिया गया। पहली और अब तक अन्तिम बार अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बूटों तले कुचला और रौंदा गया। लक्ष्मी जी, इन्दिरा जी के इस कदम की और सिद्धार्थ जी की कार्यप्रणाली से बहुत दुःखी और नाखुश थीं और परिणामस्वरूप काँग्रेस पार्टी की प्राथमिक सदस्यता से त्यागपत्र देकर मोरारजी देसाई जी के साथ हो लीं। इसमें इनके गुजराती ससुराल पक्ष ने महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। यह मतभेद इन्दिरा जी के लिये कष्टकारक तो था; पर अपने अहंकार और आवेश के कारण, वे समझौता न कर सकीं। किन्तु एक आयोजन किया, नयनतारा जी को अपने साथ जोड़ने, प्रलोभन देने और प्रभावित करने की लगातार कोशिश करने लगीं। दूसरी तरफ लक्ष्मी जी अस्वस्थ रहने लगीं। बहुत कुछ करने और सक्रिय रहने में खुद को अक्षम पाने लगीं। नयनतारा जी को लिखने-पढ़ने का थोड़ा शौक भी था और उनकी 1983 तक कुल चार पुस्तकें प्रकाशित भी थीं। संबंधों को गहराई प्रदान करने के लिये इन्दिरा जी ने 1984 में उनको अकादमी पुरस्कार दिलवाना चाहा। पर लक्ष्मी जी के विरोध के कारण सम्भव न हो सका। यह काम 1986 में राजीव गाँधी जी ने अपनी माता जी की मंशा के अनुरूप पूरा किया; जब लक्ष्मी जी अस्वस्थ थीं। फिर भी उनको जानकर अच्छा नहीं लगा था। नयनतारा जी के लिये धर्मसंकट था; माँ और इन्दिरा जी में सामञ्जस्य कैसे बिठायें? यद्यपि की वे भी इन्दिरा जी से माँ के ही कारण बहुत खुश नहीं रहती थीं। किन्तु काल की गति, दुःखद क्षण आया और इन्दिरा जी की हत्या कर दी गयी। दुर्भाग्यपूर्ण तरीके से देश की प्रधानमंत्री को मार दिया गया और जो प्रतिक्रिया हुई, वह ?? इन्दिरा जी के न रहने के बाद नेहरू-गाँधी परिवार की आगे की वंशावली ने नयनतारा जी की उपेक्षा पुनः शुरू की। कुछ समय तक राजीव जी ने यद्यपि उसे चलाया। कहते हैं दुर्दिन में आदमी सभी अपनों को खोजता है। इस खोज में कलबर्गी जी की हत्या के बाद काँग्रेस ने अशोक जी को नयनतारा जी को खोजने के लिए लगाया। पर गोस्वामी जी ने

ठीक लिखा है— ‘हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि हाथ’ जारी तो रहेगा; क्योंकि देश के साथ ही धोखा किया जा रहा है।

( सात )

चूँकि साहित्य-कला-संगीत आधारभूत अवस्था में और दर्शन-इतिहास-भूगोल, विकासात्मक अवस्था में किसी भी संस्कृति की रीढ़ होते हैं; इसीलिये इन्हीं के माध्यम से भारत की संस्कृति को लगातार नष्ट करने की कोशिश और कुचक्र देश के अन्दर और बाहर से चल रहा है। पुरस्कार वापसी इसी उद्देश्य से किया गया एक असफल दुष्कर्म है।

अब, जबकि इरफान हबीब जी और रोमिला थापर जी ने भार्गव जी के ही साथ सुर अलापने आरम्भ किये, तो कुछ इतिहासकारों के साथ बैठककर पद्म-पुरस्कारों को लौटाने की बात की; तो ठीक-ठीक ज्ञान हो गया कि 2005 में सत्ता में रहते हुए यू०पी०ए० द्वारा इरफान हबीब जी और रोमिला थापर जी को पद्म पुरस्कार क्यों दिया गया था? ये वामपंथी प्रायोजनकर्ता हैं। कम्युनिस्ट कार्ड-होल्डर रहे हैं। मृदुला मुखर्जी और के०एन० पनिक्कर जी आदि लोग तो बाद के हैं; किन्तु इरफान हबीब जी और रोमिला जी न केवल एकसाथ 1931 में पैदा हुए; बल्कि इतिहास की अज्ञानतापूर्ण इबारत भी एकसाथ पढ़ी है और जोड़-तोड़ करके सफलताएँ हासिल की हैं। ये वही लोग हैं, जिन्होंने न केवल इतिहास में, बल्कि ज्ञान की सांस्कृतिक विरासत में पूर्वाग्रहपूर्ण विचारधारा के नाम पर वामपंथी साहित्यकार, वामपंथी इतिहासकार और वामपंथी कलाकार आदि संकल्पनाओं की नींव डाली है। यदि कोई नकारात्मक और गन्दे कार्य का आरम्भ करेगा, तो उसकी प्रतिक्रिया तो होनी स्वाभाविक भी है और ज़रूरी भी; भारतीय संस्कृति-आधारित राष्ट्रवाद मज़बूरी में देश, समाज और भारतीय संस्कृति की रक्षा के लिए सामने आकर मुखर हुई सुसंस्कृति वाणी और भाषा है; जो इनके क्षत्र कर्मों को बेनकाब कर रही है।

इरफान हबीब जी वही व्यक्ति हैं, जिनके पिता मुहम्मद हबीब जी भी कहने के लिए इतिहासकार थे; किन्तु वास्तव में थे अंग्रेज़ों के एक नम्बर के

दलाल और देशद्राही; अंग्रेज़ों की सुविधाओं पर ऐश और मौज़-मस्ती करनेवाले। इतिहासकारों को यह भी जानना चाहिए कि इनके बाबा अंग्रेज़ों और मोतीलाल नेहरू जी की भाषा में प्रख्यात बैरिस्टर थे। नाम था— बैरिस्टर मुहम्मद नसीम और इन्होंने जवाहरलाल नेहरू जी के पिता या सोनिया जी के प्रायोजित पति राजीव गाँधी जी के नाना के पिता, मोतीलाल नेहरू जी के कहने पर 1916 के काँग्रेस के लखनऊ-अधिवेशन का पूरा खर्च उठाया था और जिसके एवज़ में मोतीलाल जी ने अंग्रेज़ों से इनको अनेक सुविधाएँ और विदेश-यात्राएँ और सैर-सपाटा कराया था। इरफ़ान हबीब और रोमिला थापर वास्तव में काँग्रेसी वामपंथ के बहुत करीब रहे हैं; अर्थात् इनको वामपंथ का नेहरूवियन मॉडल सबसे अच्छा लगता है। जवाहरलाल नेहरू जी, हमेशा वामपंथ और पूँजीवाद के पाले में बारी-बारी से उलट-पलटकर झूलते रहे हैं। वामपंथी इसलिये हो जाते थे, क्योंकि स्वच्छंदता के बहुत प्रेमी थे और पूँजीवादी इसलिये थे, क्योंकि ऐश और आराम इनका शगल था। भारत में ये वामपंथ का पहाड़ी नृत्य करते थे और विदेश में पूँजीवाद का डिस्को डांस।

इस देश में जान-बूझकर भारतीय इतिहास को विकृतकर यहाँ की संस्कृति को नष्ट करने के उद्देश्य से, और उस विकृत इतिहास को देश और दुनिया के सामने पेश करने की षड्यंत्रकारी मुहिम के इरफ़ान हबीब जी और रोमिला थापर जी नेतृत्वकर्ता रहे हैं और इसीलिए काँग्रेस ने बाकायदा इनके ऐशगाह के रूप जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली और एन०सी०ई०आर०टी०-जैसे संस्थान इनके हवाले कर दिये। ये वही लोग हैं, जो लाखों रुपये भारतीय इतिहास अनुसन्धान परिषद् से प्रोजेक्ट के नाम पर लिए, उसको डकार गये और उसके एक भी पैसे का बिल-बाउचर और हिसाब प्रस्तुत नहीं किया। इतने महत्वपूर्ण संस्थानों को दिवालिया बना डालने का पूरा उपक्रम किया; क्योंकि इन्हें भारतीयता, भारतीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति से कुछ भी लेना नहीं है। ये इस देश और समाज को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहते हैं। यही इनकी नियति और यही इनका उद्देश्य है।

इतना ही नहीं, इरफ़ान हबीब जी के बाबा मोहम्मद नसीम, मुहम्मद अली जिन्ना से भी बहुत प्रभावित थे। यद्यपि इनका मुस्लिम लीग की स्थापना की



मांग में तो बहुत योगदान नहीं था, तथापि ये बालगंगाधर तिलक जी के राष्ट्रवादी विचारों और कार्यों के घोर विरोधी थे और उनके विरुद्ध झण्डा बुलन्द करनेवालों को उकसाते रहते थे। *कॅसरी* का नियमित संस्करण न निकले, इसके लिए योजना बनानेवाले अंग्रेजों के पिछलग्गू बैरिस्टरों में शुमार थे। महामना मदनमोहन मालवीय जी के प्रयास से 1916 में स्थापित काशी हिंदू विश्वविद्यालय की प्रतिक्रियास्वरूप मांगकर अंग्रेजों द्वारा 'नाइटहुड' (सर) की उपाधि से मण्डित सर सैयद अहमद खान द्वारा 1875 में स्थापित अलीगढ़ में 'मुहम्मडन एंग्लो-ओरियंटल कॉलेज' को ही उच्चीकृतकर 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय' की 1920 में स्थापना में इनके बैरिस्टर बाबा मोहम्मद नसीम जी एवं पिता मोहम्मद हबीब जी का बहुत बड़ा योगदान है। इसी प्रयास के फलस्वरूप पुरस्कारस्वरूप मोहम्मद हबीब जी और उनके सुपुत्र इरफान हबीब जी को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की अध्यापकी प्राप्त हुई थी। यह विश्वविद्यालय कैसा संस्थान है ? इस विषय पर यहाँ कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं है। बाद में यह एक विशेष प्रकार की विचारधारा के प्रचार का अड्डा बनकर रह गया, यह संस्थान और उसी दृष्टि को और आगे बढ़ाने के लिए दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की स्थापा हुई और उसको भी इन लोगों ने अड्डे के रूप में उपयोग किया।

इनके विषय में कहने के लिये तो बहुत कुछ है। पर बहुत का उल्लेख ज़रूरी नहीं। एक बात का संकेतमात्र कर देना पर्याप्त होगा। जब 1989 में भारतीय इतिहास कांग्रेस का राष्ट्रीय अधिवेशन गोरखपुर में था, इरफान जी गोरखपुर आए थे; वहाँ जो ताण्डव और उपद्रव किया था, वह इनके असहिष्णु फासीवादी कार्य और आचरण का सबसे सुन्दर उदाहरण है। चीन की सहायता पर चलनेवाले इस देशविरोधी कुचक्र को नाकाम करना ही सच्ची देशभक्ति है। चीन ने विगत दिसम्बर में एंटीगुआ में संयुक्त राष्ट्र संघ के अध्यक्ष जॉन ऐश को 13 लाख डॉलर घूस इसलिए दिया था कि भारत की स्थायी सदस्यता की दावेदारी का प्रस्ताव बैठक में न आये और आ भी जाय, तो पास न हो सके।

पुष्पमित्र भार्गव जी ट्रेड यूनियन से जुड़े हुए व्यक्ति रहे हैं। इन ट्रेड यूनियनों ने पश्चिमी बंगाल की जो हालत बनाकर रखी है; उससे भारत ही नहीं, पूरा विश्व परिचित है और यह देश के लिए शर्मशार होनेवाली बात है। ट्रेड यूनियनों से अधिक घातक, ट्रेड यूनियन के पीछे की राजनीति रही है और इस राजनीति का, वामपंथियों ने जमकर फायदा उठाया है; क्योंकि ट्रेड यूनियनों के पीछे की ही राजनीति ये हमेशा करते आये हैं। जो कोलकाता कभी देश की औद्योगिक राजधानी कहलाता था और जो अनेक प्रकार की औद्योगिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है, किन्तु अब की स्थिति निश्चित ही चिन्तनीय है। भार्गव जी सदा से ही काँग्रेस-प्रायोजित वामपंथी राजनीति के आरम्भिक काल से ही हिस्सा रहे हैं और इसी कारण इसका इन्होंने बहुत लाभ उठाया है। इसी लाभ का परिणाम रहा है कि ये न केवल पद्म पुरस्कार पाने में सफल रहे हैं, बल्कि 'राष्ट्रीय ज्ञान आयोग' के उपाध्यक्ष होने में भी सफलता अर्जित की थी। इतना ही नहीं, 'राष्ट्रीय सुरक्षा-सलाहकार परिषद्' में सदस्य होने में भी सफलता प्राप्त की थी। सतीश धवन जी और अब्दुर्हमान जी-जैसे तथाकथित वैज्ञानिकों का भी इनको लगातार सहयोग मिलता रहा है। ट्रेड यूनियन के साथ-साथ, भारत में आतंकवाद के प्रस्तावना स्वरूप नक्सलवाद इनका पसंदीदा क्षेत्र रहा है और इस देशद्रोही गतिविधि को आगे बढ़ाने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इसी कारण आम आदमी पार्टी के अरविन्द केजरीवाल भी इनके सम्पर्क में आये और उनका धूर्त नक्सलवाद अब सबको दिखाई पड़ रहा है। तेलंगाना, झारखण्ड और उत्तरप्रदेश-बिहार के सीमावर्ती क्षेत्र में इन्होंने सैकड़ों लोगों की हत्या कराने में परोक्ष भूमिका का निर्वाह किया है। बीते दिल्ली विधानसभा चुनाव में केजरीवाल का भरपूर सहयोग किया है। दिल्ली में रहनेवाले राजस्थानी लोगों को प्रभावित करने के लिए राजस्थानी में लोकल डाइलेक्ट के माध्यम से बैठक कर उनके मतदाताओं को केजरीवाल जी के पक्ष में प्रभावित करने की काफ़ी कोशिश की है। विज्ञान तो इनको उपहार में प्राप्त संज्ञा है। जीवविज्ञान के क्षेत्र में इनका क्या योगदान है— यह गहन शोध और अध्ययन का विषय है।

सन् 1986 में 'पद्म भूषण' से सम्मानित 87-वर्षीय भार्गव जी ने यह

कहते हुए अपने पुरस्कार वापसी की घोषणा की है कि 'अब सरकार हमें डिक्लेट करेगी कि हम क्या खायें और क्या न खायें ? हम यह सहन नहीं कर सकते।' अजीब वैज्ञानिक हैं भार्गव साहब ! इनको नहीं पता कि, जिस आंध्रप्रदेश में अपना अधिकांश समय इन्होंने व्यतीत किया है, वहाँ पहली बार 1977 में गोहत्या पर प्रतिबन्ध लगा था। महाराष्ट्र में पहला प्रतिबन्ध 1976 में और कर्नाटक/मैसूर राज्य में 1964 में लगा था। कर्नाटक के प्रतिबन्ध के समय देश के प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री जी थे और उन्होंने कर्नाटक के उस निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा और स्वागत किया था। राज्य-पुनर्गठन अधिनियम 1956 के अनुसार वर्तमान कर्नाटक मैसूर राज्य के नाम से जाना जाता था; जो 1973 में बदलकर कर्नाटक हुआ। भार्गव जी ने इसी आधार पर पद्म सम्मान लेने से इनकार क्यों नहीं किया? इसी देश में गोहत्या पर प्रतिक्रियास्वरूप 2006 में दो लोगों की और 2013 में एक व्यक्ति की हत्या हुई; भार्गव साहब तटस्थ होकर पुरस्कार क्यों नहीं लौटाये? सबसे पहले अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता की सीमा-निर्धारण की बात 1951 में जवाहरलाल नेहरू जी ने की थी और 1977 में तो उनकी पुत्री और तत्कालीन प्रधानमंत्री इन्दिरा जी ने प्रेस सहित सभी पर सेंसरशिप जैसा ही लागू कर दिया था; तब पुरस्कार न लेने और लौटाने की स्थिति क्यों नहीं बनी?

पुरस्कार वापसी की पूरी संरचना करनेवाले तथाकथित साहित्यकारों ने जब अपनी क्षुद्र औकात समझ ली, तो पुष्पमित्र भार्गव जी के माध्यम से विज्ञान-जगत् को और इरफान हबीब जी एवं रोमिला थापर जी के माध्यम से इतिहास-जगत् को साधने और षड्यंत्र फैलाने की कोशिश की; किन्तु इसमें भी सफलता हाथ नहीं लग रही है। जुगाड़ टाइप का यह वैज्ञानिक एवं ऐतिहासिक प्रायोजन, ट्रक में लकड़ी का धूरा लगाने और ट्रक के दुर्घटनाग्रस्त हो जाने की ही क़वायद है। भार्गव जी, वैज्ञानिकों को लामबन्द करने में पूरी तरह असफल हो रहे हैं और जो कुछ इस प्रकार के वैज्ञानिक हैं भी, वे समय की नज़ाकत को भाँपकर ख़ामोश हैं; सोच रहे हैं, कौन अपनी भद पिटाये? भार्गव जी राजस्थान में पैदा हुए हैं और काशी की संस्कृति की प्रतिक्रियात्मक संस्कार में पले-बढ़े और बड़ा मुक़ाम हासिल किया हैं; काशीनाथ सिंह जी की ही तरह। हाँ, काशीनाथ जी की चर्चा चली है तो एक बार और उनका, उनके उपन्यास के बहाने से चर्चा कर लेते हैं, जिस *रेहन पर रघू* पर उन्हें 2011 का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है।

‘रघुनाथ ने सोचा और वर्मा की ‘अपने लिये जियो’ की सलाह पर अविचलित रहे! कि इस दगाबाज़ ‘आदर’ और ‘प्रतिष्ठा’ के मुकाबिले आत्मा का यह नंगापन और खुलापन कहीं ज्यादा अच्छा है।’ —यह है रेहन पर रगधू उपन्यास का एक वाक्य— ‘ये सूरज भी भोसड़ी के जल्दी जाता क्यों नहीं?’ यह बातें मैं उसी पुस्तक के बारे में कह रहा हूँ, जिसको 2011 का हिंदी का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला है। इस उपन्यास को दूसरी बार पढ़ा; क्योंकि हमारे एक अनुज और सहयोगी डॉ० आमोद कुमार राय जी ने अनेक बार मुझसे कहा कि भैया एक बार और पढ़िये! दुबारा पढ़ना तो नहीं चाहता था; किन्तु छोटे भाई की इच्छा और भावना ! मेरे एक और भाई और सहयोगी डॉ० सूर्यनारायण मिश्र जी ने भी मुझसे कहा था कि— भाई! एक बार और आप पढ़कर मुझे बताइये; पता नहीं क्यों मुझे वह उपन्यास वाहियात.....? सवाल उठता है क्या हर आदमी व्याभिचारी होता है? क्या हर आदमी के माँ-बाप की बच्चों से नहीं पटती और वे सभी मनमानी करते हैं? क्या हर आदमी झगड़ालू होता है? क्या हर व्यक्ति अमानवीय होता है? क्या हर व्यक्ति का किसी बात या घटना पर क़ल्ल हो जाता है? क्या हर व्यक्ति विवाह कहीं और, तथा प्रेम कहीं और करता है? क्या हर व्यक्ति अपनी पत्नी को प्रेम नहीं करता है? क्या शहर का हर आदमी असुरक्षित है? क्या शहर और गाँव का अन्तर सबको समझ में नहीं आता? एक चौराहे से एक दिन में यदि दस हज़ार लोग गुजरते हैं, और एक साल में कोई एक व्यक्ति मर जाय, तो क्या समाज में मरने की उसी नज़ीर के पीछे, उस चौराहे से आवागमन बन्द हो जाय? क्या हर आदमी अपनी गृहस्थी छोड़कर, केवल अमर्यादित और असामाजिक सेक्स की ही फ़िराक में रहता है? यदि आप यह उपन्यास पढ़ेंगे, तो ऐसे हज़ार सवाल आपके मन में गूँजेंगे। काश ! मैं उक्त दोनों बन्धुओं की बात नहीं मानता, तो मुझे काशीनाथ सिंह जी के विषय में इतने कठोर बात नहीं कहनी पड़ती। यदि काशीनाथ जी सच और पारदर्शिता के इतने ही हिमायती हैं, तो उन्हें बताना चाहिये था, कि यह समाज और दुनिया की समस्या नहीं, केवल उनके जैसे कुछ मुट्ठीभर लोगों की आपबीती है। ये खुद वही कौशिक सर हैं, जो सरला के साथ सारनाथ में....! मैं उस भाषा का प्रयोग नहीं कर सकता; जो खुद वे अपनी कुण्ठा में करते हैं। कुल मिलाकर, यह एक बहुत ही घटिया और सड़ी हुई साहित्यिक कृति है; जो किसी भी दशा में साहित्य कहलाने की अधिकारिणी नहीं है और

साहित्य अकादमी का पुरस्कार पाने की तो कतई नहीं। फूहड़ता, व्यभिचार और अपराध किसी फिल्म के आइटम साँग की तरह ठूँसा हुआ है। यदि उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर 'हाँ' है, तो भी, रस्तीभर लोग समाज के मार्गदर्शक और भूमिका-निर्धारक नहीं हो सकते। और उत्तर 'नहीं' है, तो बृहत्तर समाज के उपर इस छद्म और पाखण्ड का आरोपण नहीं किया जा सकता!

एक विषय यहाँ और प्रासंगिक है। जर्मनी और इटली के फासीवाद और नाज़ीवाद की भारतीय उपसंहार हैं सोनिया मायनो या सोनिया गाँधी जी और इसी उद्देश्य से वह भारत आई थीं और अभी भारत में हैं। जिस प्रकार मदर टेरेसा को ईसाई-मिशनरी का कार्य फैलाने के लिए भारत भेजा गया और सेवा के बहाने लाखों अबोध और निर्दोष भारतीय बन्धुओं को धर्मांतरित कराने का खेल खेला गया और खेला जा रहा है। काँग्रेस पूँजीवाद-प्रायोजित भारतीय वामपंथ, जिसे हम वामपंथ का नेहरूवियन मॉडल कहते हैं; भारत के लिये ख़तरनाक है और इसका इस देश से समूल नष्ट होना आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य है। मार्क्सवादियों और वामपंथियों को बहुत समय से यह लग रहा था कि, यदि भारत में नेहरू-गाँधी परिवार का ख़ात्मा हो जाय तो हम लोग भारत में ठीक से स्थापित हो सकते हैं; पर हो रहा है, ठीक उलटबासी; किन्तु वामपंथी अपने नेहरू-गाँधी परिवार के ख़ात्मे के एक उद्देश्य में तो सफल रहे, पर दूसरा उद्देश्य उनके गले की फाँस है और वह उन्हीं की इतिश्री कर डालेगा। यह ईश्वरीय विधान भी है और दुनियावयी सच भी।

पर सभी सनातन एवं भारतीय संस्कृति के उपासकों को ध्यान में रखना होगा तथा सचेत एवं सावधान भी रहना होगा; क्योंकि ख़तरा चौतरफ़ा है और भारत निकट भविष्य में दुनिया में भारतीयता के माध्यम से बड़ी इबारत लिखने जा रहा है। लगता है कि यह झंझावात आनेवाले लगभग दो वर्ष तक और चलेगा और उसके पहले नापाक शक्तियाँ कोई भी छोटा-बड़ा षड्यन्त्र कर सकती हैं। भारतवर्ष, भारतीयता, यहाँ की सांस्कृतिक विरासत, पूर्व का सकारात्मक इतिहास एवं 1950 के पूर्व और बाद के घटनाक्रम तथा वर्तमान परिस्थितियाँ स्पष्ट रूप से समकालीन धरातल की रूपरेखा और पृष्ठभूमि का भविष्योन्मुखी यही कहता है और यही होनेवाला है। 2015 से लेकर डेढ़ दशक 2030 तक का कालखण्ड

भारतवर्ष के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण होगा और इसी कालखण्ड में भारत सबसे प्रखर नक्षत्र और सबसे संपन्न तथा शक्तिशाली देश होगा। विश्व का ज्ञान-विज्ञान—सभी क्षेत्रों में मार्गदर्शन करेगा। इसके पहले भारत चीन का सबसे बड़ा शत्रु होगा और उससे भारत युद्ध का सामना करना पड़ेगा या उससे भी विकट स्थिति आ सकती है। अपने कदम, अपने बयान आदि पर बहुत ही सतर्क और सावधान रहना होगा; क्योंकि भारत के सामने संकट आंतरिक देशविरोधी शक्तियों के कारण अधिक आयेंगी। भारत में काँग्रेस और नेहरू-गाँधी परिवार का कुल जीवनकाल 10 से 15 वर्ष और वामपंथ का 18 से 20 वर्ष मात्र है और ये दोनों शक्तियाँ अपने अन्तिम पड़ाव पर वर्ग-संघर्ष पैदा करने से लेकर कोई भी देश को अस्थिर करनेवाला कार्य कर सकती हैं। सतर्क और सावधान रहें; हम अवश्य सफल होंगे।





